कुरुक्षेत्र

फरवरी 1998

मूल्य : पांच रुपये

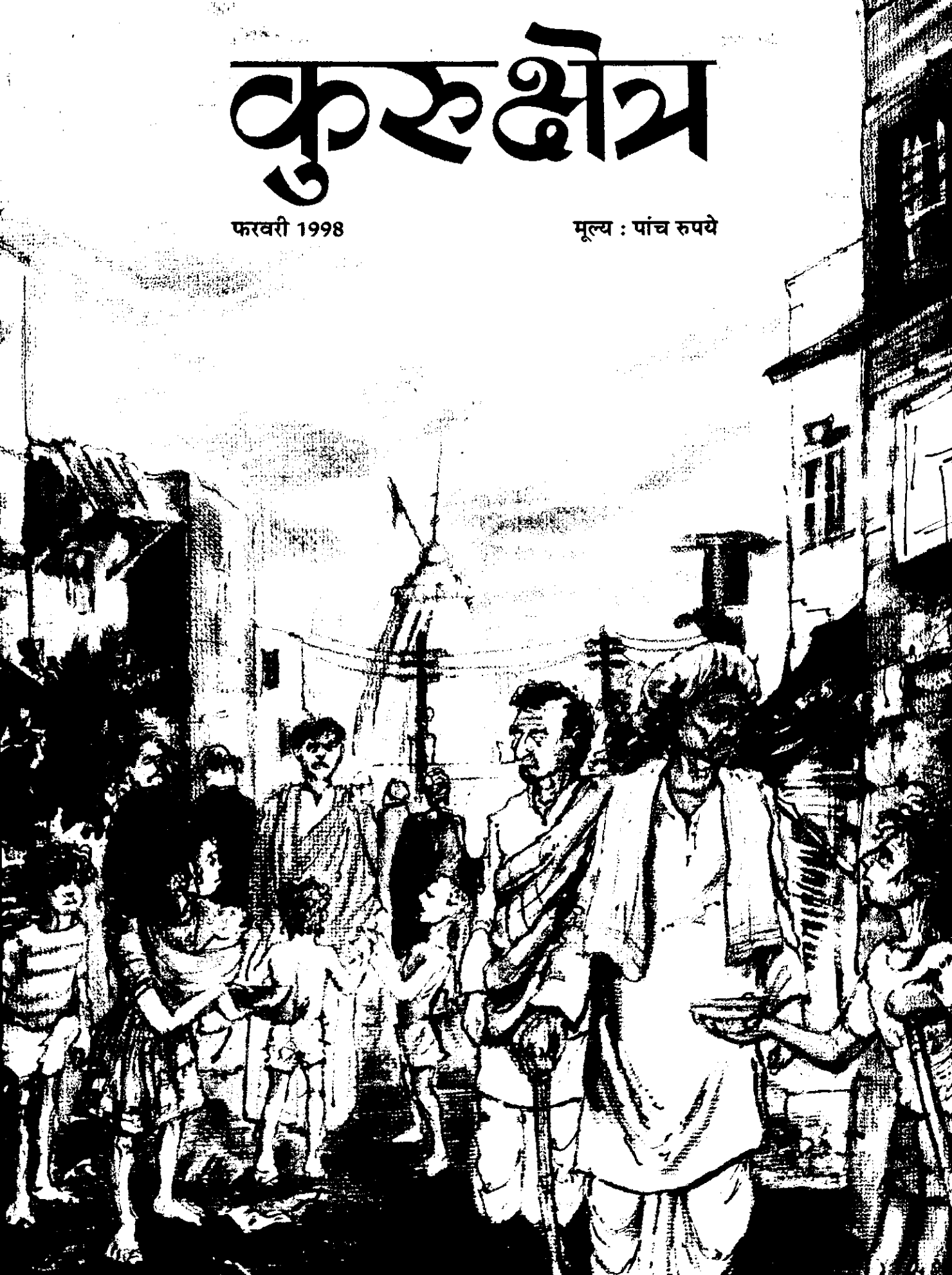

रोजगार समाचार

देश में पांच लाख से भी अधिक लोगों द्वारा पढ़ा जाने वाला साप्ताहिक पत्र

इसमें है:-

- ❒ रोजगार संबंधी जानकारी
- ❒ प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए उपयोगी सूचनाएं
- ❒ ज्ञानवर्धक लेख तथा अन्य स्तंभ

रोजगार समाचार का प्रकाशन
सूचना एवं प्रकाशन मंत्रालय के प्रकाशन विभाग द्वारा
आर.के.पुरम, नई दिल्ली से किया जाता है

स्थानीय विक्रेता से संपर्क करें अथवा निम्न पते पर लिखें:

सहायक सम्पादक (प्रसार), रोजगार समाचार,
ईस्ट ब्लाक-4, लैवल-5, आर.के.पुरम, नई दिल्ली-110066.
दूरभाष-6107405

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय
प्रमुख मासिक पत्रिका

वर्ष 43 | अंक 4 | माघ-फाल्गुन 1919 | फरवरी 1998

कार्यकारी संपादक
बलदेव सिंह मदान

उप संपादक
रजनी

संपादकीय पता
संपादक, 'कुरुक्षेत्र', ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय,
कृषि भवन, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 3015014
फैक्स : 011-3015014
तार : ग्राम विकास

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
डी.एन. गांधी

विज्ञापन प्रबंधक
के.एस. जगन्नाथ राव

आवरण सज्जा
एम.एम. मलिक
सलिल शैल

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने और अंक न मिलने की शिकायत, सहायक व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110001 से करें। विज्ञापनों के लिए विज्ञापन प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक-4, लेवल-7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066 से संपर्क करें। फोन : 6105590

हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी में भी प्रकाशित इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

मूल्य एक प्रति : पांच रुपये
वार्षिक शुल्क : 50 रुपये
द्विवार्षिक : 95 रुपये
त्रिवार्षिक : 135 रुपये

इस अंक में

● स्वावलंबी और स्वायत्त गांव	सिद्धराज ढड्ढा	3
● कैसे बढ़े पंचायती राज में सामुदायिक सहभागिता	डा. सुरेन्द्र कुमार कटारिया	5
● जनता का कार्यक्रम : राष्ट्रीय सामाजिक सहायता योजना	पी.आर. त्रिवेदी	7
● बाल भिक्षु प्रथा : बच्चों के लिए अभिशाप	डा. रोहिणी प्रसाद	9
● बेटी (कहानी)	महेश चन्द्र जोशी	10
● पंचायती राज प्रबंधन और पशुधन विकास योजनाएं	डा. डी.डी. शुक्ला	13
● ग्रामीण बेकारी : स्थिति और उपाय	शिशिर कुमार चौरसिया	15
● ग्रामीण क्षेत्रों में दुग्ध सहकारी समितियों का सामाजिक प्रभाव	सुशील कुमार राय	17
● क्या बालिका समृद्धि योजना से सुधरेगी बच्चियों की दशा	डा. महीपाल	18
● घट रहा है पानी	प्रमोद भार्गव	21
● आर्थिक समृद्धि के लिए मोती पालन	डा. सीताराम सिंह पंकज	23
● सहकारिता का शिक्षा प्रसार में योगदान	प्रो. उमरावमल शाह	27
● ग्रामीण विकास में सड़क परिवहन का महत्व	डा. मोहम्मद हारून	30
● गन्ना विकास बनाम ग्राम्य विकास	हरि विश्नोई	33
● सुदूर संवेदन तकनीक से सर्वेक्षण	डा. दिनेश मणि	37
● ग्रामीण विकास में गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका	डा. अनिल दत्त मिश्रा	39
● सावधान! थकान खतरनाक बीमारी का लक्षण हो सकता है	डा. राकेश सिंह	41

पाठकों के विचार

'भूख की सजा' कहानी गरीबी की मर्मस्पर्शी तसवीर प्रस्तुत करती है

कुरुक्षेत्र सितम्बर 1997 का अंक काफी रोचक, ज्ञानवर्द्धक एवं परीक्षोपयोगी लगा। मैं अब इस पत्रिका का वार्षिक सदस्य बन गया हूं। इस अंक में प्रकाशित *बढ़ती जनसंख्या और गिरता स्वास्थ्य, गांवों में नशाखोरी, हरित क्रांति में पुस्तकालयों की भूमिका* लेख काफी रोचक लगे। खासकर *भूख की सजा* कहानी गांवों की वास्तविक गरीबी, भुखमरी तथा भोलेपन की ओर हमारा ध्यान खींचती है। यह कितनी दुखद और आश्चर्य की बात है कि एक तरफ संपन्न वर्ग अपना धन पानी की तरह ऐशो-आराम में बहाते हैं, दूसरी तरफ गरीब जनों को सूखी रोटी भी नसीब नहीं। धिक्कार है, ऐसे बनावटी समाज को! सही अर्थों में भारत के सभी नागरिक अभी भी आजाद नहीं हो पाए हैं।

राजेश्वर कुमार, शिक्षक, अंबा, खगड़िया, बिहार

सभी रचनाएं उपयोगी और ज्ञानवर्द्धक लगीं

कुरुक्षेत्र सितम्बर 1997 अंक देखने का अवसर मिला। इसमें सभी रचनाएं, लेख एवं अन्य सामग्री शिक्षाप्रद, उपयोगी और ज्ञानवर्द्धक हैं। डा. दिनेश मणि का लेख *अपना हिन्दुस्तान कहां, वह बसा हमारे गांवों में* बहुत अच्छा लगा। इसके अलावा आज की ज्वलंत तथा सामाजिक समस्या पर डा. विमला उपाध्याय का लेख *गांवों में नशाखोरी : समस्या और समाधान* भी गांवों में रहने वाले अशिक्षित एवं अज्ञानी व्यक्तियों को इस बुराई से छुटकारा दिलाने के लिए सार्थक पहल है। गांव वालों को इस बुराई से बचना चाहिए, तभी वे अपनी उन्नति कर सकते हैं। पत्रिका की छपाई एवं आवरण पृष्ठ आकर्षक है।

डा. जयंती जैन, व्याख्याता, श्री दिगम्बर जैन महिलाश्रम, सागर (म.प्र.)

अगस्त 1997 का अंक बहुत पसंद आया

अगस्त 1997 के *कुरुक्षेत्र* को पढ़कर झूम गया। ग्रामीण विकास का 50 सालों का सफर पत्रिका का प्रतिपाद्य था, जो गांवों के देश भारत की आजादी की स्वर्ण जयंती के अवसर पर प्रकाशित होने के सर्वथा योग्य है। *ऐसे मनाएंगे स्वर्ण जयंती* में बाल्मीकि प्रसाद सिंह के विचार संस्कृतिपरक, विचार प्रेरक और उत्साहवर्द्धक हैं। भारतीय गांवों की सामाजिक-आर्थिक-सांस्कृतिक प्रगति और राजनीतिक जागरूकता की तमाम उपलब्धियों के बावजूद यह निर्विवाद है कि लक्ष्य अभी बहुत दूर है। *आजादी के बाद ग्रामीण महिलाएं : क्या पाया, क्या खोया* भी अपने ढंग का बेजोड़ लेख है। आशारानी व्होरा इसके लिए बधाई-पात्रा हैं।

अरुण कुमार पाठक, पाठक विगहा, पड़रावां, औरंगाबाद, बिहार

भारत की स्वर्ण जयंती पर नायाब तोहफा

मैं विगत पांच वर्षों से *कुरुक्षेत्र* पत्रिका का नियमित पाठक हूं। अगस्त 1997 का *ग्रामीण विकास : सफर 50 साल का* पढ़ा। श्री सुन्दर लाल कुकरेजा का लेख *रहने को घर नहीं, सारा जहां हमारा* में यह बताया गया है कि 70 करोड़ आबादी गांवों में रहती है और ग्रामीण लोग आवास की समस्या के कारण गांव छोड़ कर शहरों की ओर पलायन करने लगे हैं जबकि मेरी दृष्टि में ग्रामीणों का शहरों की ओर पलायन का मुख्य कारण रोजगार-धंधे की तलाश है, क्योंकि कृषि से सबको रोजगार नहीं मिल पाता। अत: ग्रामीण उद्योगों को बढ़ावा देना होगा। इसके अतिरिक्त श्री भारत डोगरा का लेख *किस दिशा में जा रहे हैं, हमारे गांव, ग्रामीण क्षेत्र में स्वास्थ्य सेवाएं* सत्यवीर त्यागी, *स्वतंत्रता के बाद शिक्षा नीति : प्रगति, संभावनाएं और चुनौतियां* डा. जी. धवन के आलेखों ने बेहद प्रभावित किया।

कुल मिलाकर यह अंक भारत की आजादी की 50वीं सालगिरह पर नायाब तोहफा है।

डा. एस.के. शर्मा, 195, यू.जी.सी. क्वाटर्स, झाबुआ, मध्य प्रदेश

जनसंख्या वृद्धि ने लोगों को मूलभूत सुविधाओं से दूर किया

कुरुक्षेत्र सितम्बर 1997 अंक में प्रकाशित *बढ़ती जनसंख्या और गिरता स्वास्थ्य* पर डा. सुरेन्द्र कुमार कटारिया का लेख समसामयिक, विचारोत्तेजक तथा आत्मविश्लेषणात्मक था। वास्तव में जनसंख्या में निरंतर हो रही अभिवृद्धि ने, जनता को मूलभूत सुविधाओं से दूर किया है क्योंकि सभी निर्धारित कार्यक्रमों को जितनी सफलता मिलती है, उससे दूनी जनसंख्या फिर बढ़ जाती है जिससे सारे प्रयास निष्फल हो जाते हैं। राजनीतिक इच्छा-शक्ति के अभाव में जनसंख्या पर अकुंश न लगाने से स्वास्थ्य का स्तर गिरा है।

श्यामानन्द पाण्डेय, पाण्डेय कुंज, गोरखपुर रोड, गौरी बाजार, देवरिया, उत्तर प्रदेश

सभी राज्यों के विकास की एक्स-रे रिपोर्ट

कुरुक्षेत्र का दिसम्बर अंक पढ़ा। डा. उमेश जी का विश्लेषण आंखें खोल देने वाला है। इससे समस्त भारतीय राज्यों के विकास की 'एक्स-रे' रिपोर्ट मिल गई। डा. गणेश पाठक का मत्स्य पालन के वैश्विक पर्यावरण में भारत की वस्तुस्थिति से अवगत कराने वाला लेख अच्छा लगा। स्वतंत्रता के बाद कृषि विकास पर एक विशेष अंक प्रकाशित करते, तो अच्छा रहता।

चन्द्रभूषण, 791/598, नया मम फोर्डगंज, इलाहाबाद

(शेष पृष्ठ 14 पर)

स्वावलंबी और स्वायत्त गांव

सिद्धराज ढड्ढा

जीवन-धारण मनुष्य की ही नहीं, सभी प्राणियों की प्राथमिक आवश्यकता है। धर्माचरण के लिए भी शरीर और जीवन अपेक्षित है। उनके बिना धर्माचरण भी संभव नहीं है—''शरीर माद्यं खलु धर्मसाधनम्।''

जीवन दो प्रमुख बातों पर आधारित है। एक है रोज के खाने-पीने आदि जीवन-धारण की अनिवार्य आवश्यकताओं का प्रबंध। दूसरा आधार है समाज, क्योंकि जीवन-धारण समुचित रूप से और सुविधा से हो सके इसके लिए अपने निज के श्रम के साथ-साथ समाज के अन्य लोगों का सहयोग भी अपेक्षित है।

जीवन-धारण के ये दोनों पहलू कृषि और ग्रामीण संस्कृति से जुड़े हुए हैं। भोजन, कपड़ा, मकान—मनुष्य की सभी प्राथमिक भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति धरती से होती है और खेती इस आपूर्ति का प्रमुख साधन है। खेती में परस्पर सहयोग की आवश्यकता रहती है। बुवाई के समय और फसल पक जाने पर, दोनों ही समय सामूहिक सहयोग की आवश्यकता होती है। घर बनाने के साधन—पत्थर, गारा, बांस-बल्ली आदि तो धरती से प्राप्त हो जाते हैं लेकिन घर खड़ा करने, छप्पर बांधने आदि कामों में सहयोग की आवश्यकता होती है। परस्पर सहयोग से ये सब काम आसानी से और बिना खर्च के हो जाते हैं। हमारे गांवों में परंपरा से इस प्रकार का परस्पर सहयोग आम बात रही है। इन सब बातों को देखते हुए किसानों के लिए छोटे समूह में या आस-पास रहना ज्यादा उपयोगी होता है। खेती तथा जीवन के लिए अन्य जरूरी सामग्री व काम, जैसे खेती के औजारों का निर्माण व मरम्मत, बर्तन-भांडे, कपड़े, जूते, तेल आदि के लिए आवश्यक उद्योग की व्यवस्था भी गांव में ही वहां उत्पन्न या उपलब्ध कच्चे माल से आसानी से हो सकती है। गांव का जीवन सदियों से इस प्रकार परस्पर सहयोग और हर एक की अपनी मेहनत से उत्पन्न की गई वस्तुओं के आदान-प्रदान से बहुत सुगमता से चलता रहा है।

गांव अर्थात पास-पड़ोस में बसे हुए ऐसे छोटे-छोटे परस्परावलंबी समूह (फेस टू फेस कम्युनिटी) मनुष्य समाज की मूलभूत और आवश्यक इकाई हैं। लगभग पूरा जीवन साथ बिताने और साथ मिलकर परस्पर सहयोग से जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के कारण इन छोटे समाजों में परस्पर संबंध परिवार की तरह ही घनिष्ठ हो जाते हैं। गांव अपनी असली स्थिति में एक विस्तारित परिवार ही होते हैं, गांव के लोग एक-दूसरे के सुख-दुख में हिस्सेदार होते हैं, सुख में हिस्सेदारी उनके आनंद को बढ़ाती है और दुख में हिस्सेदारी उसके कष्ट को घटाती है। केवल मनुष्य ही नहीं अन्य प्राणियों में भी समूह-जीवन व्यापक रूप से पाया जाता है। प्राकृतिक परिवेश में अक्सर पशु और अन्य जीव-जंतु टोली या झुंड बनाकर रहते हैं। दीमक, चीटियां, मधुमक्खियां ऐसे कई प्राणियों का तो एक अच्छा खासा विकसित संगठन होता है। इस प्रकार समाज और व्यक्ति परस्पर पूरक हैं। व्यक्तियों से मिलकर ही समाज बनता है और समाज के बिना व्यक्ति का जीवन सुचारू रूप से चलना संभव नहीं है। समाज ठीक तरह से चल सकने के लिए उसके अंगभूत व्यक्तियों में परस्पर प्रेम, सद्भाव, सहयोग और मदद आवश्यक तत्व हैं। इनके बिना न तो जीवन ठीक से चल सकता है, न समाज में शांति और खुशहाली रह सकती है। परस्पर द्वेष और संघर्ष समाज को नष्ट कर देते हैं।

गांव और परिवार, ये दो ऐसी इकाइयां हैं जिनमें व्यक्ति को सहयोग और परस्पर सेवा के संस्कार मिलते हैं और दृढ़ होते हैं। परिवार के सदस्यों में खून के रिश्ते के कारण आपस में प्रेम का भाव तथा मिल-जुल कर काम करने और आवश्यकता पड़ने पर एक-दूसरे की सेवा करने की प्रेरणा सहज होती है। इसी प्रकार गांव भी परस्पर सहयोग और पारिवारिक भावना के विकास के लिए उत्तम भूमि और अवसर प्रदान करता है। परिवार और गांव ये दोनों ही इकाइयां वास्तव में सामाजिक जीवन की बुनियाद हैं और दोनों ही स्वाभाविक भी हैं। इनकी रचना के लिए कोई अस्वाभाविक प्रयत्न नहीं करना पड़ता।

लेकिन आज परिवार और गांव दोनों खतरे में हैं। गांव तो करीब-करीब टूट ही चुके हैं, अब परिवार भी तेजी से टूट रहे हैं। मानव-जाति के विकास क्रम में इनकी उपयोगिता खत्म हो गई हो, इसलिए ये टूट रहे हैं ऐसा नहीं है। जो परिस्थितियां इनके टूटने में सहायक हो रही हैं वे अपने-आप या प्राकृतिक कारणों से पैदा नहीं हुई हैं। ये परिस्थितियां हमारे अज्ञानवश गलत मूल्यों को स्वीकार कर लेने के कारण पैदा हुई हैं। कुछ स्वार्थी तत्वों द्वारा भी योजनापूर्वक इन्हें तोड़ने का प्रयत्न हो रहा है।

हमारे देश का उदाहरण लें, अंग्रेज ईस्ट इंडिया कंपनी के रूप में व्यापार के लिए यहां आए थे, लेकिन जब

गांव अपनी असली स्थिति में एक विस्तारित परिवार ही होते हैं, गांव के लोग एक-दूसरे के सुख-दुख में हिस्सेदार होते हैं, सुख में हिस्सेदारी उनके आनंद को बढ़ाती है और दुख में हिस्सेदारी उसके कष्ट को घटाती है। केवल मनुष्य ही नहीं, अन्य प्राणियों में भी समूह-जीवन व्यापक रूप से पाया जाता है। प्राकृतिक परिवेश में अक्सर पशु और अन्य जीव-जंतु टोली या झुंड बनाकर रहते हैं। दीमक, चीटियां, मधुमक्खियां ऐसे कई प्राणियों का तो एक अच्छा खासा विकसित संगठन होता है।

उन्होंने देखा कि यहां के गांव की स्वावलंबी व्यवस्था को तोड़े बिना उनका हित सिद्ध नहीं होगा, वे अपने यहां कारखानों में बनी हुई वस्तुओं को यहां नहीं खपा सकेंगे, तब उन्होंने उस व्यवस्था को योजनापूर्वक तोड़ना शुरू किया। इसकी तफसील में जाना आवश्यक नहीं है पर यह बात सर्वविदित है। अंग्रेजी राज के दिनों में ही कुछ विद्वानों द्वारा लिखी गई पुस्तकें जैसे दादाभाई नौरोजी की *पावर्टी एंड अन-ब्रिटिश रूल इन इंडिया*, रोमेश दत्त का *भारत का आर्थिक इतिहास*, पं. सुंदरलाल की पुस्तक *भारत में अंग्रेजी राज*—इस बात के प्रचुर प्रमाण उपस्थित करती हैं। अभी कुछ वर्ष पहले दो विदुषी महिलाओं, प्रो. केडिया और प्रो. सिन्हा द्वारा प्रकाशित *रूट्स ऑफ अंडर-डेवलपमेंट* में भी इस तथ्य को अनेक ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर प्रस्तुत किया गया है कि यूरोप की आर्थिक प्रगति के तरीकों, विकास संबंधी उसकी नीतियों, वहां की अर्थ-व्यवस्था, वहां की राजनीतिक सोच और सदियों के अनुभव पर निर्मित वहां के मानस का हमारी (भारत की) गरीबी हमारे तथाकथित पिछड़ेपन तथा हमारी आर्थिक समस्याओं से गहरा और सीधा संबंध है।

लेकिन आज परिवार और गांव दोनों खतरे में है। गांव तो करीब-करीब टूट ही चुके हैं, अब परिवार भी तेजी से टूट रहे हैं। मानव-जाति के विकास क्रम में इनकी उपयोगिता खत्म हो गई हो, इसलिए ये टूट रहे हैं ऐसा नहीं है। जो परिस्थितियां इनके टूटने में सहायक हो रही हैं, वे अपने आप या प्राकृतिक कारणों से नहीं पैदा हुई हैं। ये परिस्थितियां हमारे अज्ञानवश या गलत मूल्यों को स्वीकार कर लेने के कारण पैदा हुई हैं।

अंग्रेजों ने भारतीय समाज की अस्मिता, आत्म-सम्मान और आत्म-विश्वास को तोड़ कर उसको लाचार, शक्तिहीन तथा अन्याय का विद्रोह कर सकने के नाकाबिल बना दिया। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जो यांत्रिक शोध और मशीनों का विकास हुआ, उसने पश्चिम के व्यक्तिवादी और भोगवादी सोच के हाथ में परंपरागत स्वावलंबी, समाज पोषक अनाक्रमणकारी व्यवस्था को तोड़ने और उसका शोषण करने का एक ओर जबर्दस्त हथियार दे दिया। यह अत्यंत दुर्भाग्य की बात है कि आजादी के बाद भारत की सरकारों ने भी उन्हीं नीतियों को बढ़ाया है। पिछले ढाई सौ बरसों की यह प्रक्रिया अब दैत्याकार बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा चंद पूंजीपतियों की धनलिप्सा और ऐशो-आराम की तुष्टि के लिए दुनिया भर के लोगों और प्राकृतिक संसाधनों के शोषण व दोहन के रूप में शायद अपने चरम को पहुंच रही है।

पांच सौ बरस पहले धन-लिप्सा से प्रेरित यूरोपियन जातियों के विस्तारवाद से आरंभ हुई और पिछले ढाई सौ बरस की औद्योगिक क्रांति से पुष्ट हुई यूरोप की भोगवादी और व्यक्तिवादी संस्कृति की इस दौड़ ने गरीबी, भुखमरी, कुपोषण, अभाव, रोग, अपराध, हिंसा और लाचारी का एक आलम खड़ा कर दिया है, दुनिया को खंडहर बना दिया है। परिवार और गांव के टूटने से समाज व्यवस्था तो छिन्न-भिन्न हो ही गई, राज-व्यवस्था और उसके अंग-उपांग—पुलिस, फौज, कानून, अदालत और तरह-तरह की व्यवस्थाएं सब शोषणकारी वर्ग की दासी बन कर उनके हाथ में अन्याय के विरुद्ध सिर उठाने वालों और वर्तमान संस्कृति के खिलाफ विद्रोह करने वालों को दबाने का साधन बन गई हैं।

पांच सौ बरस पहले धन-लिप्सा से प्रेरित यूरोपियन जातियों के विस्तारवाद से आरंभ हुई और पिछले ढाई सौ बरस की औद्योगिक क्रांति से पुष्ट हुई यूरोप की भोगवादी और व्यक्तिवादी संस्कृति की इस दौड़ ने गरीबी, भुखमरी, कुपोषण, अभाव, रोग, अपराध, हिंसा और लाचारी का एक आलम खड़ा कर दिया है, दुनिया को खंडहर बना दिया है।

मानव-जाति के सामने खड़े इस व्यापक संकट का मुकाबला अब संगठित लोकशक्ति ही कर सकती है। आम जनता की संगठित सत्याग्रही अहिंसक शक्ति ही आज की समस्या का एकमात्र हल है। जनता की यह संगठित शक्ति स्वाश्रयी और स्वावलंबी छोटे-छोटे समुदायों में ही प्रकट हो सकती है और कार्य कर सकती है। इन छोटे समूहों की सारी व्यवस्था का संचालन और स्थानीय संसाधनों के उपयोग का अधिकार किसी बाहरी शक्ति के नहीं, स्वयं इनके हाथों में होगा। यही संगठित इकाइयां, यानी गांव की ग्राम सभाएं, सत्ता का केंद्रीय अधिष्ठान होंगी, गांव के ऊपर के स्तरों पर जो व्यवस्था होगी वह भी इनके नियंत्रण में चलेगा, उन स्तरों पर व्यवस्था के लिए जिम्मेदार प्रतिनिधियों पर संगठित ग्राम सभाओं और निर्वाचन क्षेत्रों के मतदाता संगठनों का नियंत्रण होगा।

गांधी जी ने इस विषय में बहुत स्पष्ट शब्दों में बार-बार अपने विचार व्यक्त किए हैं। नवंबर सन् 1928 में उन्होंने अपने साप्ताहिक 'यंग इंडिया' में लिखा था—"मेरी राय में भारत की—न सिर्फ भारत की बल्कि सारी दुनिया की—अर्थरचना ऐसी होनी चाहिए जिसमें किसी को भी अन्न और वस्त्र के अभाव की तकलीफ न सहनी पड़े। यह आदर्श निरापवाद रूप से तभी कार्यान्वित किया जा सकता है, जब जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं के उत्पादन के साधन जनता के नियंत्रण में रहें तथा हर वयस्क को इतना काम अवश्य मिल जाए कि वह अपने खाने-पहनने की जरूरतें पूरी कर सकें... उत्पादन के साधन हर एक को बिना किसी बाधा के उसी तरह उपलब्ध होने चाहिये जिस तरह भगवान की दी हुई हवा और पानी हमें उपलब्ध है। किसी भी सूरत में उत्पादन के साधन दूसरों के शोषण के लिए चलाए जाने वाले व्यापार का वाहन न बनें। हम आज न केवल अपने देश में बल्कि दुनिया के दूसरे हिस्सों में भी जो गरीबी और भुखमरी देखते हैं उसका कारण इस सीधे-सादे सिद्धांत की उपेक्षा ही है।"

आगे चलकर गांधी जी कहते हैं—"जीवन की मुख्य आवश्यकताएं प्राप्त कर लेना प्रत्येक मानव का समान अधिकार है। वैसे यह अधिकार पशु और पक्षियों को भी है। प्रत्येक अधिकार के साथ एक संबंधित कर्त्तव्य भी जुड़ा हुआ है। वह कर्त्तव्य यह है कि हम अपने हाथ-पांवों से मेहनत करें। साथ ही, जीवन की मुख्य आवश्यकताएं प्राप्त कर लेने का हमारा जो अधिकार है, उस पर कहीं से कोई आक्रमण हो तो इसका

(शेष पृष्ठ 6 पर)

कैसे बढ़े पंचायती राज में सामुदायिक सहभागिता

डा. सुरेन्द्र कुमार कटारिया

स्वतंत्रता के पश्चात देश की अर्थ-व्यवस्था को गति देने तथा नागरिकों की न्यूनतम आवश्यकताएं सुलभ कराने के लिए अनेक प्रकार की योजनाएं तथा कार्यक्रम आरंभ हुए। इसी क्रम में 2 अक्तूबर 1952 को सामुदायिक विकास कार्यक्रम, विविध पक्षों को समाहित करते हुए ग्रामीण विकास को गति देने का प्रथम बहुआयामी प्रयास था। इस कार्यक्रम के प्रथम पांच वर्ष में ही यह स्पष्ट हो गया था कि ग्रामीण विकास के लिए संचालित यह कार्यक्रम अनेक बाधाओं से पीड़ित है। उन बाधाओं में प्रमुख थी—ग्रामीण जन-सहभागिता की कमी अर्थात आम जनता, सरकार के इस कार्यक्रम में पूर्णतया सहयोगी या वांछित भूमिका नहीं निभा पा रही थी। इसी कमी को दूर करने तथा गांधी जी के 'ग्राम स्वराज' की कल्पना को साकार करने के लिए पंचायती राज संस्थाओं का सन् 1959 में शुभारंभ किया गया। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का मूर्त रूप समझी जाने वाली ये संस्थाएं क्या सचमुच ग्रामीण जनता का सहयोग प्राप्त कर पाईं? योजना आयोग, केन्द्रीय समितियों, सामाजिक-आर्थिक सर्वेक्षणों से लेकर विशेषज्ञों के आकलन तक में यह स्पष्टत: स्वीकार किया जा चुका है कि निम्न स्तर पर स्थापित हुई लोकतंत्र की ये पाठशालाएं जन-सहभागिता के क्रम में पर्याप्त सफल सिद्ध नहीं हुईं।

पंचायती राज को ग्रामीणों का सहयोग न मिल पाना कई कारकों पर निर्भर है। वस्तुत: अंग्रेजी शासन से पूर्व भारतीय गांव न्यूनाधिक मात्रा में आत्मनिर्भर इकाई थे। सामुदायिक सहयोग के माध्यम से समाज कल्याण के कार्य किए जाते थे जिनमें सड़क, सराय, धर्मशाला, तालाब, स्कूल तथा प्याऊ का निर्माण और प्राकृतिक आपदाओं में सामूहिक आयोजन सम्मिलित थे। दुर्भाग्य से स्वतंत्रता के पश्चात यह प्रचारित होने लगा था कि अब हम स्वतंत्र हो गए हैं। हमारा अपना प्रशासन तथा सरकार है, वह विकास के सारे कार्य स्वयं करेगा। अत: लोगों के मनोमस्तिष्क में यह गहराई से अंकित हो गया कि अब सभी कार्य सरकार करेगी तथा सरकार को ये कार्य करने भी चाहिए क्योंकि यह उसकी बाध्यता तथा कर्तव्य है। इस मनोवृत्ति के कारण आम आदमी का प्रशासन तथा इसकी संस्थाओं से अलगाव होता चला गया। दूसरी ओर नौकरशाही की कार्यशैली, अशिक्षा का व्यापक प्रसार, गरीबी, जातीय संघर्ष, रूढ़िवादिता, जन चेतना की कमी तथा बिगड़ते राजनीतिक पर्यावरण ने भी सामुदायिक सहभागिता की राह में रोड़े अटकाए। इस तरह सामुदायिक सहयोग के अभाव में ग्राम पंचायतें निष्क्रिय बनी रहीं।

सामुदायिक सहभागिता के महत्व को इंगित करते हुए पांचवीं पंचवर्षीय योजना के प्रारूप में कहा गया था—"प्रभावी नियोजन के लिए आम जनता तथा उनके प्रतिनिधियों की सहभागिता एक प्राथमिक आवश्यकता है।" प्रबंध तथा समाज विज्ञानों के विशेषज्ञों के अनुसार सामुदायिक सहभागिता बढ़ाने के लिए अनेक प्रतिमान (माडल) हैं जिनमें नौकरशाही, मिशनरी, सहभागिक, प्रोन्नतिकारक तथा सहभागिता प्रतिमान प्रमुख हैं।" यहां इन प्रतिमानों की चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है। अत: यहां सामान्य अनुभव के आधार पर वे आयाम स्पष्ट किए जा रहे हैं जो पंचायती राज में सामुदायिक सहभागिता बढ़ा सकने में व्यावहारिक सिद्ध हो सकते हैं। सर्वप्रथम, ग्राम सभा अर्थात गांव के वयस्क व्यक्तियों की आम सभा को सशक्त रूप से क्रियाशील बनाना होगा। इसके लिए ग्रामवासियों के मनोमस्तिष्क में सरकारी प्रयासों के प्रति विश्वास पैदा करना होगा। इस संबंध में अंतर्राष्ट्रीय बाल केन्द्र, पेरिस के महानिदेशक एतीने बरथेट की टिप्पणी एकदम सटीक है। उनका कहना है कि "मानव स्वभावत: ही किन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति से संतुष्टि प्राप्त करता है। अत: लोगों की विचारधारा परिवर्तित करने से पूर्व उन्हें यह समझाना आवश्यक है कि परिवर्तन से अंतत: उन्हें क्या लाभ प्राप्त हो सकता है।" पंचायती राज को जन-जन का राज बनाने के लिए भी गांवों को स्थानीय समस्याओं के अनुरूप ढालना आवश्यक है। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा यही कहती है कि सत्ता का विकेन्द्रीकरण निचले स्तर पर हो, स्थानीय व्यक्ति स्वयं अपनी योजनाएं बनाएं, स्वयं उनका प्रबंधन करें तथा स्वयं ही उसके नियंत्रणकर्ता भी हों। अत: लोगों को सत्ता में भागीदारी देने के लिए उनमें पर्याप्त राजनीतिक चेतना का विकास भी एक पूर्वापेक्षा है।

दूसरा, स्थानीय समस्याओं का विश्लेषण करते समय उनमें प्राथमिकता का निर्धारण किया जाना चाहिए। बिना किसी भेद-भाव के उस कार्य को

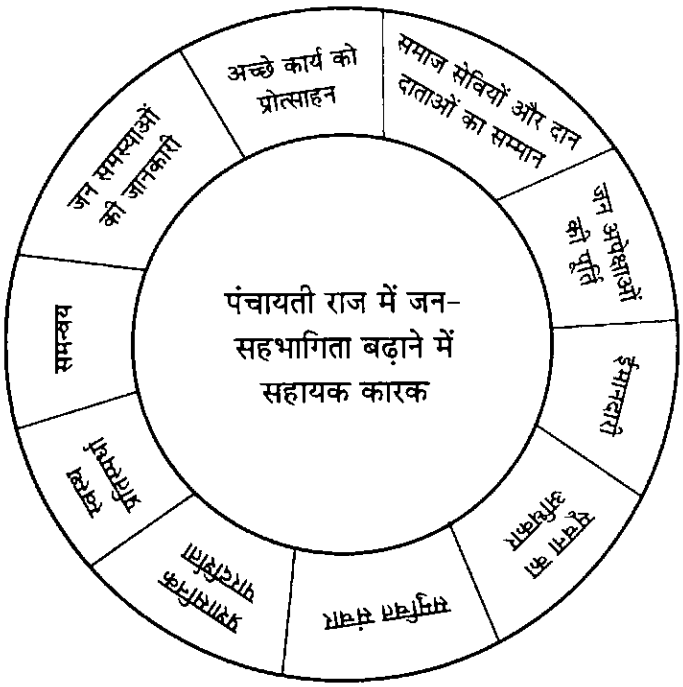

पहले संपादित करना चाहिए जो गांव के लोगों की तात्कालिक आवश्यकता है। यदि ग्राम पंचायत ऐसा कार्य करेगी जो गांव के लिए अत्यावश्यक नहीं है या जिससे व्यर्थ ही सरकारी धन व्यय होगा तो लोगों के मन में अरुचि पैदा होती है। बहुत-से ग्रामीण ऐसा भी सोचते हैं कि ग्राम पंचायतें सरकारी कार्यालय ही हैं तथा यहां तो धन बरबाद ही होता है। इस भ्रामक धारणा को भी तत्काल दूर करने की आवश्यकता है क्योंकि जब तक लोग पंचायती राज को खुद का शासन नहीं समझेंगे, उनकी सहभागिता भी सुनिश्चित नहीं हो सकेगी।

तीसरा, सामुदायिक सहभागिता का महत्वपूर्ण पक्ष है—आय या वित्तीय स्रोतों का उन्नयन। इस हेतु दानी सज्जनों, उद्योगपतियों, धनिकों तथा अन्य समृद्ध लोगों से पर्याप्त सहयोग लिया जाना चाहिए क्योंकि भारतीय संस्कृति में तो दान-पुण्य की आज भी बहुत प्रतिष्ठा है। दान देने वाले व्यक्तियों के नाम का यथास्थान स्थायी उल्लेख भी जरूरी है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपने प्रयासों या सत्कर्मों का फल देखना चाहता है। जिस गांव में धनिक या दानी व्यक्ति नहीं हों, वहां सामूहिक चर्चा करके प्रति व्यक्ति कुछ सहायता लेकर कार्य शुरू करना चाहिए। इस संबंध में एक उल्लेखनीय उदाहरण गांव डूमरौली तहसील बहरोड़ (अलवर) के ग्रामीणों ने प्रस्तुत किया है। इस गांव के माध्यमिक स्कूल को उच्चतर माध्यमिक (10+2) में क्रमोन्नत करने के लिए राजस्थान सरकार ने एक लाख रुपये दिए तथा शेष एक लाख रुपये गांववासियों से एकत्र करने को कहा ताकि सरकार पर भी बोझ न पड़े। ग्राम सभा की बैठक हुई। बैठक में गांव के प्रत्येक परिवार से न्यूनतम 200 रुपये लिए गए किंतु किसी परिवार में सरकारी अधिकारी, कर्मचारी के पद तथा वेतन, खेती के आकार, वाहनों (ट्रैक्टर) की स्थिति के आधार पर एक मापदंड निर्धारित करते हुए अतिरिक्त राशि समृद्धि के अनुसार भी ली गई। इसमें किसी को भी आपत्ति नहीं हुई और दो दिन में सामुदायिक सहयोग से स्कूल क्रमोन्नत हो गया।

चौथे, लोगों को सूचना का अधिकार प्राप्त होना चाहिए। भारतीय समाज में शिक्षा तथा चेतना का पर्याप्त प्रसार हो रहा है। साथ ही संचार माध्यमों की तीव्रता और न्यायिक सक्रियता ने आम आदमी को जागरूक बनाया है। यदि पंचायती राज संस्थाएं स्थानीय जनता के पैसे से संचालित हो रही हैं अथवा सरकारी (लोकतंत्र में तो जनता ही संप्रभु है) पैसा व्यय हो रहा है, तो आम आदमी का यह अधिकार बनता है कि वह समस्त कागजातों, फाइलों का निरीक्षण करे अथवा उनकी प्रतिलिपि प्राप्त करे। प्रशासनिक कार्यों में पारदर्शिता लाने तथा भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने के साथ-साथ सूचना का यह अधिकार, निस्संदेह पंचायती राज में सामुदायिक सहभागिता बढ़ाएगा। पंचायती राज संस्थाओं में कार्य करने वाले जनप्रतिनिधियों का सरकारी विभागों से बार-बार वास्ता पड़ता है। यदि उन्हें नौकरशाहों से पर्याप्त सहायता या समुचित उत्तर प्राप्त नहीं होता है तो वे न केवल कुंठित एवं हतोत्साहित होते हैं बल्कि पंचायती राज संस्थाओं के प्रति उनकी विरक्ति बढ़ जाती है। अत: सरकारी तंत्र को भी निष्पक्षता, कर्मठता, ईमानदारी तथा स्वस्थ प्रतिस्पर्धा के साथ पंचायती राज संस्थाओं को समुन्नत करने में सहायता करनी चाहिए ताकि ग्राम-स्वराज्य का सपना यथार्थ में परिवर्तित हो सके। ❑

पृष्ठ 4 का शेष **(स्वावलंबी और स्वायत्त गांव)**

इलाज यह है कि जो हमें अपनी मेहनत के फल से वंचित करे उसके साथ हम असहयोग करें।''

यही गांधी जी की कल्पना का ग्राम-स्वराज्य है। ग्राम-स्वराज्य एक ऐसी अकेन्द्रित व्यवस्था का परिचायक है जिसमें सत्ता और शक्ति किन्हीं ऐसी दूर की केंद्रीकृत संस्थाओं के हाथ में नहीं होगी जिन पर लोगों का कोई काबू न हो, बल्कि सीधे लोगों के हाथ में और उनके नियंत्रण में होगी। सत्ता के दलालों अर्थात आज की पार्टियों के हाथ में नहीं। स्वावलंबी और स्वायत्त गांव इस अकेंद्रित व्यवस्था की बुनियादी इकाई होगा। इस ग्राम-स्वराज्य में नगर भी रहेंगे, लेकिन आज की तरह गांवों के तथा प्रकृति के शोषण पर, उनकी बलि पर, जीने वाले अस्वाभाविक रूप से दैत्याकार नगर नहीं, बल्कि ग्राम-व्यवस्था के पूरक और ग्रामीण व्यवस्था को आवश्यक सेवाएं प्रस्तुत करने वाले और उस व्यवस्था को पुष्ट करने वाले नगर होंगे, नगरों पर ग्रामीण समाज का नियंत्रण होगा।

''हमारे गांव में हम (गांव वाले खुद) सरकार होंगे! केंद्र व राज्यों में जनता के नियंत्रण की—केवल जनता से वोट लेकर मनमानी करने वाली नहीं—सरकार होगी।'' ❑

जनता का कार्यक्रम : राष्ट्रीय सामाजिक सहायता योजना

पी.आर. त्रिवेदी

देश के ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाले गरीब ग्रामीण अपने जीविकोपार्जन की अनेक समस्याओं से संघर्ष करते रहने के साथ-साथ कभी-कभार भीषण संकट में आकंठ डूब कर परिवार को बेहाल कर देते हैं। अप्रत्याशित रूप से आए इस संकट से प्रभावित ग्रामीण परिवारों को तत्काल आर्थिक सहायता की आवश्यकता होती है जिसके अभाव में परिवार टूट कर समाज तथा देश के लिए भावी संकट पैदा कर देता है। इस सामाजिक समस्या को दूर करने के लिए भारत सरकार ने 'राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम' के तहत तीन योजनाएं राज्यों में संचालित की हैं जिनसे नि:संदेह लाभकारी संकेत ग्रामीण समाज में मिल रहे हैं। हालांकि इन योजनाओं में 'राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना' के अंतर्गत कुछ प्रगति का आकलन देखने को मिलता है लेकिन 'राष्ट्रीय परिवार लाभ योजना' तथा 'राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना' के अंतर्गत अभी भी प्रगति पर्याप्त नहीं है। इसकी मुख्य वजह योजनाओं के ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापक प्रचार-प्रसार का अभाव, अधिसंख्य ग्रामीणों की योजना के प्रति अनभिज्ञता तथा योजनाओं को अमल में लाने वाले कार्मिकों की अरुचि प्रमुख है।

राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम एक केंद्र-प्रायोजित कार्यक्रम है जिसे 15 अगस्त 1995 से देश में लागू किया गया। इस कार्यक्रम में केंद्र सरकार द्वारा निर्धारित मापदंडों एवं शर्तों के अनुसार जरूरतमंद ग्रामीणों को लाभ प्रदान करने के लिए शत-प्रतिशत केंद्रीय सहायता देने का प्रावधान है। यह कार्यक्रम संविधान के अनुच्छेद 41 और 42 के नीति-निर्देशक सिद्धांतों को, जो इस संबंध में केंद्र एवं राज्य सरकारों की समवर्ती उत्तरदायित्व को दर्शाते हैं, को पूरा करने की ओर एक महत्वपूर्ण कदम है। गरीब परिवारों को वृद्धावस्था, आजीविका कमाने वाले व्यक्ति की मृत्यु तथा मातृत्व के मामले में सामाजिक सहायता प्रदान करने में राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम का उद्देश्य राज्यों द्वारा इस समय दिए जा रहे अथवा भविष्य में दिए जाने वाले लाभों के अतिरिक्त न्यूनतम राष्ट्रीय मानक सुनिश्चित करना है। इस कार्यक्रम में शत-प्रतिशत केंद्रीय सहायता देने का आशय यह सुनिश्चित करना है कि देश में लाभार्थियों को हर जगह बिना किसी रोक-टोक के सामाजिक संरक्षण समान रूप से मिलता रहे।

राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी उन्मूलन तथा बुनियादी आवश्यकता की व्यवस्था के लिए संचालित योजनाओं के साथ सामाजिक उपायों को जोड़ने के अवसर भी प्रदान करता है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत 'राष्ट्रीय परिवार लाभ योजना' और 'राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना' के अंतर्गत दिए जाने वाले लाभों के लिए अनेक मापदंड निर्धारित किए गए हैं। परिवार का मुखिया, जो जीविकोपार्जक होता है, उसकी प्राकृतिक मृत्यु की दशा में पांच हजार रुपये तथा दुर्घटना में मृत्यु की दशा में परिवार को 10 हजार रुपये की नकद सहायता प्रदान करने का प्रावधान है। इससे शोक संतप्त परिवार को भूखों मरने की नौबत नहीं आती और उन्हें भविष्य के लिए जीविकोपार्जन की बाबत कुछ करने की योजना बनाने में आर्थिक सम्बल मिल जाता है। यह सहायता केवल गरीबी की रेखा से नीचे जीवन-यापन करने वाले चयनित परिवारों को ही देय है।

'राष्ट्रीय परिवार लाभ योजना' के तहत मुख्य जीविकोपार्जक उस परिवार का वह सदस्य पुरुष अथवा महिला होगा जिसकी आय का अंशदान कुल पारिवारिक आय का सबसे बड़ा अनुपात होगा। ऐसे व्यक्ति की मृत्यु 18 से 64 वर्ष के मध्य हुई हो। परिवार लाभ मृतक के परिवार के ऐसे जीवित सदस्य को दिया जाता है जिसे स्थानीय जांच के आधार पर परिवार का मुखिया निर्धारित किया गया हो। इस योजना का लाभ प्राप्त करने के लिए लाभार्थी को निर्धारित प्रपत्र में अपनी ग्राम पंचायत में आवेदन प्रस्तुत करना अनिवार्य होता है। ग्राम पंचायत आवेदन पत्र को प्रमाणीकृत कर अपनी टिप्पणी सहित 15 दिन के भीतर संबंधित पंचायत समिति को अग्रसित करती है। प्रकरण की आवश्यक जांच के पश्चात संस्वीकृति अधिकारी (विकास अधिकारी), सहायता राशि मनीआर्डर द्वारा लाभार्थी को प्रेषित करता है।

इसी प्रकार 'राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना' के अंतर्गत गरीबी की रेखा से नीचे जीवन-यापन करने वाले परिवारों की महिलाओं को सशर्त एकमुश्त नकद सहायता सुलभ कराई जाती है। मातृत्व लाभ पहले दो जीवित बच्चों तक गर्भवती महिलाओं को ही प्रदान किया जाता है जिसकी आयु 19 वर्ष या अधिक हो। इस क्रम में लाभ की अधिकतम राशि तीन सौ रुपये निर्धारित की गई है तथा यह चयनित परिवार की महिला को ही देय है। इस योजना का लाभ प्राप्त करने के लिए लाभार्थी महिला को निर्धारित प्रपत्र में अपनी ग्राम पंचायत को आवेदन करना होता है तथा नजदीकी स्वास्थ्यकर्मी की सिफारिश पर ग्राम पंचायत स्वीकृति जारी करती है। लाभार्थी को मनीआर्डर द्वारा राशि भेजी जाती है तथा योजना संस्वीकृति अधिकारी ग्राम सेवक होता है।

उपरोक्त दोनों योजनाओं में लाभार्थियों को राशि भेजने का मनीआर्डर-व्यय प्रशासनिक व्यय में से किया जाता है, न कि सहायता राशि में से। साथ ही योजना के संस्वीकृति अधिकारी को योजना के लाभार्थी की पात्रता के बारे में झूठी अथवा गलत सूचना के आधार पर किए गए भुगतान को वसूल करने का अधिकार भी प्रदत्त किया गया है। राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम के समयबद्ध क्रियान्वयन, पर्यवेक्षण तथा समन्वय सुनिश्चित करने के लिए राज्य स्तर पर मुख्य सचिव की अध्यक्षता में नौ सदस्यों की एक समिति का गठन भी किया गया है। समिति के सदस्यों में विकास आयुक्त, प्रमुख शासन सचिव चिकित्सा एवं स्वास्थ्य, शासन सचिव स्थानीय निकाय विभाग, शासन सचिव वित्त, शासन सचिव समाज कल्याण, भारत सरकार के ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय के प्रतिनिधि, स्वयंसेवी संस्था का प्रतिनिधि तथा सदस्य सचिव, ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज के विशिष्ट शासन सचिव एवं निदेशक होते हैं। इसी प्रकार जिला स्तर पर कार्यक्रम की क्रियान्विति, समन्वय तथा समीक्षा के लिए जिला कलेक्टर की अध्यक्षता में 13 सदस्यों की समिति गठित की गई है। इस समिति में स्थानीय सांसद, जिला प्रमुख, परियोजना निदेशक, पंचायत समितियों के प्रधान एवं विकास अधिकारी, नगरपालिकाओं के अध्यक्ष एवं अधिशासी अधिकारी, समाज कल्याण अधिकारी, मुख्य चिकित्सा एवं स्वास्थ्य अधिकारी, कोषाधिकारी, स्वयंसेवी संगठन के प्रतिनिधि सदस्य होते हैं तथा मुख्य कार्यकारी अधिकारी सदस्य सचिव होता है।

जिले में राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम के क्रियान्वयन के लिए जिला परिषद के मुख्य कार्यकारी अधिकारी को 'नोडल आफीसर' बना कर कार्यक्रम क्रियान्वयन का उत्तरदायित्व सौंपा गया है। कार्यक्रम के अंतर्गत इन योजनाओं के जिलेवार भौतिक लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं। ये भौतिक लक्ष्य 1991 की जनसंख्या में निर्धनता के अनुपात, कुल जनसंख्या में 65 वर्ष से अधिक आयु वर्ग का अनुपात, 18 से 64 वर्ष के आयु वर्ग में विशिष्ट मृत्यु दर, अपक्व जन्म दर तथा कुल जन्मों में प्रथम दो जीवित बच्चों के अनुपात के आधार पर किया गया। जिलेवार लक्ष्यों का पंचायत समितिवार निर्धारण करके लक्ष्यों के अनुरूप, प्राप्ति सुनिश्चित की जाती है। कार्यक्रम की प्रगति के आधार पर राशि का आबंटन सीधा जिलों के जिला ग्रामीण विकास अभिकरण के अलग खाते में किया जाता है। आबंटित राशि के उपयोग में आते ही अगली किश्त का आबंटन भारत सरकार द्वारा किया जाता है तथा इस खाते से प्रगति के अनुसार पंचायत समिति को राशि हस्तांतरण सुनिश्चित करने का दायित्व मुख्य कार्यकारी अधिकारी का होता है।

राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम निश्चित रूप से गरीब ग्रामीणों की भलाई का कार्यक्रम है लेकिन योजना से जुड़े कार्मिकों की निष्ठा में कमी, स्वयंसेवी संगठनों के जुड़ाव के अभाव तथा व्यापक प्रचार-प्रसार की कमी के कारण अभी तक जनता का कार्यक्रम नहीं बन पाया है। सामाजिक दायित्वों तथा मानव कल्याण से परिपूर्ण यह योजना स्वयंसेवी संगठनों के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में काफी असरदार साबित हो सकती है। ❑

अनुकरण मरण, मौलिकता जीवन

महाराज

बन्धु! चलना ही पर्याप्त नहीं
पथ-ज्ञान होना भी है आवश्यक।
मंजिल से दूर ले जाता है हमें
गलत दिशा में रखा हर कदम।

बनना ही बनाना है
बनकर ही बनाया जाता है।
कथनी-करनी जब तक हो न एक
उपदेश व्यर्थ ही जाता है।

अनुकरण मरण, मौलिकता जीवन
स्वयं द्वारा निर्मित होता स्वयं का जीवन।
जिस जीवन में स्वयं की सुगंध नहीं
वह कैसे हो सकता स्वयं का जीवन?

तूफानों से टकराने में जो कतराए
हम कैसे कहें उसे यौवन?
जल छान पिये, लहू बिन छाना
उस जीवन को, कैसे कहें मानव जीवन?

बन्धु! स्वयं के मांगे मूल्य से
कभी मूल्य अधिक नहीं मिलता।
जब तुम स्वयं को स्वयं कहते दरिद्र
तुम्हें दरिद्रता से मुक्त कौन कर सकता?

विवेक, पुरुषार्थ, धैर्य दीप ले आगे बढ़ो
दीनता तम नजर नहीं आएगा।
सत्य यदि धारण करे न कवच विवेक-पुरुषार्थ का
तो वह भी असत्य के हाथ मारा जाएगा।

बाल भिक्षु प्रथा : बच्चों के लिए अभिशाप

डा. रोहिणी प्रसाद*

बाल भिक्षु प्रथा किसी भी समाज पर एक बोझ है जो समाज तथा मानवता के नाम पर कलंक है। आज भारत को स्वतंत्र हुए पांच दशक व्यतीत होने के पश्चात भी देश के 33 प्रतिशत बच्चे मजदूरी करने तथा भिक्षा मांगने के लिए मजबूर हैं। यह भिक्षुकीय प्रथा देश के हाट-बाजारों, रेलवे स्टेशनों, बस अड्डों, रेलगाड़ियों, सिनेमा और अधिक भीड़ वाले स्थानों में पाई जाती है। इसे मानवीय और कानूनी आधार पर अनुचित ठहराया गया है। संयुक्त राष्ट्र संघ की एक रिपोर्ट के अनुसार विश्व में सबसे अधिक बाल भिक्षु भारत में हैं। विश्व में कुल बाल भिक्षुओं का लगभग पांचवा हिस्सा भारत में विद्यमान है। यहां लगभग एक करोड़ बाल भिक्षु हैं। बाल भिक्षुओं पर किए गए ताजे सर्वेक्षण के अनुसार भारत के हर तीसरे परिवार में एक बाल श्रमिक तथा हर दसवें परिवार में एक बाल भिक्षु है जिसकी आयु 5 से 14 वर्ष तक की होती है। इनमें लगभग 30 लाख बच्चे स्टेशनों तथा रेलों में, 20 लाख बस अड्डों तथा भीड़-भाड़ वाले इलाकों में और शेष बड़े-बड़े शहरों के उद्यानों तथा मंदिरों में भीख मांगते देखे जाते हैं। देश के 80 प्रतिशत से अधिक बाल भिक्षु मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, राजस्थान, तमिलनाडु और आंध्र प्रदेश में हैं।

बाल भिक्षु क्यों

अशिक्षा, पारिवारिक परंपराएं, निर्धनता, आर्थिक अभाव, भुखमरी आदि ऐसे अनेक कारण हैं, जो बाल भिक्षु प्रथा को जन्म देते हैं। इसके अतिरिक्त देश में अनेक ऐसे गिरोह भी सक्रिय हैं जो बच्चों का अपहरण कर उन्हें भीख मांगने के लिए विवश करते हैं। ऐसी घटनाएं बिहार, दिल्ली, मुंबई, असम, पंजाब जैसे प्रदेशों में अधिक घटित होती हैं।

विभिन्न जातियों और समुदायों पर आधारित हमारी सामाजिक संरचना भी ऐसी है कि निम्न जाति के लोगों में, जन्म लेने वाले बच्चों को मजदूरी और भीख मांगने का कार्य उन्हें विरासत में मिलते हैं। पारिवारिक परिस्थितियों तथा सामाजिक संरक्षण के अभाव में जो बच्चे मजदूरी का कार्य नहीं करते, वे या तो भीख मांगने के काम में संलग्न होते हैं या असामाजिक कार्यों में लिप्त होकर समाज में अनेक समस्याएं उत्पन्न करते हैं।

*सहायक प्रोफेसर, शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय कोहका, नेवरा, रायपुर, म.प्र.

भिक्षु प्रथा से जुड़े बच्चों की भी अपनी समस्याएं हैं। इन्हें समुचित मात्रा में पौष्टिक आहार नहीं मिल पाता। वे अनेक बीमारियों से ग्रसित होते हैं। धूल, धुएं, धूप, शोर तथा अनिद्रा के कारण बाल भिक्षु स्थायी तौर पर अस्वस्थ रहने लगते हैं और फेफड़ों, चर्म आदि के रोगों से ग्रसित रहते हैं। दुर्घटनाओं का शिकार होना, इन बच्चों के लिए आम बात है जिसमें इन्हें अपने शरीर के अंगों से हाथ भी धोना पड़ता है। कभी-कभी तो वे मौत के शिकार भी हो जाते हैं। इन सभी अमानवीय परिस्थितियों का सामना करते हुए बच्चे भिक्षा मांगने तथा मजदूरी करने के लिए विवश होते हैं। ऐसे में बच्चों के मन में चंचलता समाप्त हो जाती है। वे कुंठा तथा तनाव के कारण मानसिक रूप से विक्षिप्त भी हो जाते हैं।

सरकार की उदासीनता

यूं तो अभी तक सरकार द्वारा कई बाल कल्याणकारी अधिनियम पारित किए गए हैं उनमें से बाल अधिनियम 1933, बाल रोजगार अधिनियम 1938, भारतीय फैक्टरी अधिनियम 1940, औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947, बागान श्रम अधिनियम 1951, खान अधिनियम 1951, मोटर यातायात अधिनियम 1961 तथा बाल श्रमिक अधिनियम 1986 प्रमुख हैं। परंतु बाल भिक्षु से संबंधित कोई ठोस अधिनियम पारित नहीं किया गया है जिससे बाल भिक्षु प्रथा को समाप्त या कम किया जा सके।

भारतीय संविधान के नीति-निर्देशक सिद्धांतों में कहा गया है कि सभी राज्यों को चाहिए कि वह 14 वर्ष तक बच्चों को नि:शुल्क शिक्षा उपलब्ध कराए तथा उसके स्वास्थ्य और रहन-सहन पर विशेष ध्यान रखे।

संविधान के अनुच्छेद 39 'ड' और 'च' में कहा गया कि राज्य अपनी नीति का क्रियान्वयन इस प्रकार करे कि बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग न हो और आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर बच्चों को मजदूरी तथा भीख मांगने के लिए विवश न होना पड़े।

उन्मूलन के उपाय

बाल भिक्षु प्रथा की समस्याओं का अंत केवल कानूनी घोषणाओं तथा आश्वासनों से संभव नहीं है। इसके लिए इस समस्या की जड़ तक पहुंचना नितांत आवश्यक है, तभी बाल भिक्षु जैसे अभिशाप से समाज को मुक्ति मिल सकती है। बाल भिक्षु प्रथा के उन्मूलन हेतु कुछ सार्थक सुझाव इस प्रकार दिए जा सकते हैं:

- सरकार को चाहिए कि वह बाल भिक्षु से संबंधित एक 'आयोग' गठित कर बाल कल्याण से संबंधित योजनाओं को क्रियान्वित करे।
- स्वयंसेवी संस्थाएं, सामाजिक चिंतक, समाजशास्त्री तथा देश के राजनेता बाल भिक्षुओं की ओर अपना ध्यान आकृष्ट करें और भिक्षा प्रथा से जुड़े बच्चों के लिए एक ऐसी नीति का प्रारूप बनाएं जिसमें ऐसे बच्चों के लिए कल्याणकारी योजनाओं का समावेश हो।

(शेष पृष्ठ 34 पर)

बेटी

महेश चन्द्र जोशी

डा. नलिनी ने अपने चैंबर में प्रवेश किया ही था कि उसे कुछ बेचैनी-सी प्रतीत होने लगी। उसकी समझ में नहीं आया कि एकाएक उसे ऐसा क्यों महसूस हो रहा है?

वह कुर्सी पर आ बैठी। कुछ क्षणों तक खामोश बैठी रही। फिर उसका एक हाथ सामने मेज पर रखी घंटी पर पड़ा जिसका स्वर सुनते ही दरवाजे पर बैठा चपरासी चौंका। उसकी ओर देखकर उठ खड़ा हुआ। दूसरे ही पल उसके संकेत से एक-एक कर मरीजों को अंदर भेजने लगा।

चार-पांच मरीजों के भीतर आने और जाने के बाद एक वृद्ध ने एक वृद्धा को थामे हुए चैंबर में प्रवेश किया जिन्हें देखते ही नलिनी का मन फिर विचलित हुआ। उसने वृद्धा को स्टूल की ओर संकेत कर कहा—"बैठिए।" वृद्धा के कठिनाई से बैठने पर उसे चैक किया। गंभीर स्थिति देखकर दोबारा चैक किया। फिर वृद्धा से पूछा—"आपकी यह स्थिति कब से है?"

"दो-तीन माह से हालत बहुत खराब है डाक्टरनी जी।" वृद्धा बुझे-बुझे स्वर में बोली।

"तो फिर आपने इलाज क्यों नहीं करवाया?"

"करवाया तो था, पर....।" वृद्धा आगे न बोल सकी।

नलिनी ने वृद्ध की ओर देखा। दूसरे ही पल नाराजगी भरे स्वर में बोली—"आपकी भी आंखें अब खुली हैं?"

"क्या बताऊं डाक्टरनी साहिबा!" वृद्ध रुआंसे स्वर में हाथ जोड़ता हुआ बोला—"मजबूरी ही ऐसी थी कि.....।"

"आपकी तो मजबूरी हो गई। इनकी जान खतरे में पड़ गई.....मालूम नहीं चला आपको?"

वृद्ध, नलिनी के पैरों पर झुक गया। गिड़गिड़ाते हुए बोला—"इसकी जान बचा लो, डाक्टरनी साहिबा। इसकी.....।"

"अरे यह क्या।" नलिनी पैरों को पीछे करती हुई बोली—"बुजुर्ग होकर आप मेरे पैरों पर झुक रहे हैं.....। यह ठीक नहीं है....। इनका नाम?"

"रमा....। रमा पांडे।"

"रमा पांडे....। और इनके पिता का....?

"भोला दत्त तिवारी....। इसी जिले में गांधी नगर के जाने-माने वकील थे....।"

"ओह माई गाड।" नलिनी का पीड़ित स्वर गूंज उठा और वह विचार सागर में डूब गई।

तब नलिनी दो-तीन वर्ष की थी। उस वक्त भी उसके पिता कालेज के विद्यार्थी थे। कालेज घर से बहुत दूर था। अत: वह होस्टल में रहते थे।

शुरू-शुरू में तो वह सप्ताह भर में ही घर आ जाते। फिर कुछ माह बाद महीने भर में आने लगे। वह भी केवल पैसे लेने।

एक बार जब वह पांच-छह सप्ताह में भी नहीं आए तो घर वालों को चिंता हुई। पता लगाया तो मालूम हुआ कि वह जुए की लत के कारण कुछ दिन पहले ही कालेज और होस्टल छोड़ गए।

घर वालों ने उनकी काफी खोज की। आखिर में वह मिले भी तो नशे में बुरी तरह डूबे हुए।

नलिनी की मां रोती-बिलखती पीहर लौट आई। वहां सबने उसे समझाया और किसी हद तक शांत किया। पर नलिनी के नाना जी यह सब बर्दाश्त नहीं कर पाए। उन्होंने घर वालों के विरोध के बावजूद कानूनी कार्यवाही कर, नलिनी की मां की दूसरी शादी कर दी। लेकिन दूसरे पिता ने शादी होते ही नलिनी को अपने पास रखने से साफ इंकार कर दिया। इससे नलिनी तो पीड़ित हुई ही, उसके नाना जी को भी गहरा धक्का लगा। पर उन्होंने यह घोषणा की कि नलिनी उनके साथ रहेगी और अपने मन को किसी हद तक शांत किया।

अब नलिनी नाना जी के विशेष स्नेह की छत्र-छाया तले फलने-फूलने लगी। पर कभी-कभी उसे मां से दूर रहने की बात ऐसी खलती कि वह रो-रो कर सबको भिगो देती। मां भी जब-जब उसकी यह स्थिति सुनती या देखती, तो अपना आंचल भिगो लेती। फिर भी दूसरे पिता का पत्थर दिल न पिघलता।

इतना होने पर भी शुरू के दो-तीन वर्ष तक, मां के कभी-कभी पीहर आते रहने पर नलिनी को तनिक राहत मिलती रही। तत्पश्चात दूसरे पिता तथा नाना जी के परिवार वालों के बीच नलिनी को रखने संबंधी गर्मा-गर्मी से उत्पन्न टकराव का चरम बिन्दु आ जाने पर वह उस खुशी से भी वंचित हो गई। उस समय भी वंचित रही, जब उसकी मां की गोद में एक नन्हा-मुन्ना किलकारियां मारने लगा था। और वह, उसे देखने और गोद में खिलाने के लिए मचल उठी थी।

नाना जी ने समझाया—"नलिनी रोकर जिन्दगी नहीं बनती, कुछ करने से बनती है। विशेष कार्य करने से....।" तब नलिनी, नाना जी की बात की गहराई में न उतर सकी। जब उतरने योग्य हुई तो वह आगे बढ़ी। बढ़ती गई। फिर भी जब कभी वह सबके बीच में अपने को अकेला महसूस करती तो विचलित हो जाती। सोचने लगती कि आखिर इंसान इतना स्वार्थी क्यों बनता जा रहा है? क्यों अपने में ही इतना सीमित होता जा रहा है....? संतोषजनक उत्तर न तलाश पाने पर भी वह फिर आगे बढ़ी। तेजी से आगे बढ़ने का प्रयत्न करने लगी। आखिर एक दिन उसने अपने जीवन के लक्ष्य को पा ही लिया। वह डाक्टरी की विशेष योग्यता प्राप्त कर डाक्टर बन गई। वह और तरक्की कर कुछ अर्से बाद ही प्रांत के इने-गिने डाक्टरों के बीच आ खड़ी हुई।

"किस सोच में डूब गईं, डाक्टरनी साहिबा।" वृद्ध कुछ पल खामोश रहकर बेचैनी भरे स्वर में बोला—"क्या मेरी पत्नी की हालत बहुत खराब है?"

नलिनी चौंकी। वर्तमान में लौटी। गर्दन सीधी कर विश्वास भरे स्वर में बोली—"चिंता न करें। चिंता करने से कोई लाभ नहीं

होता....। ये ठीक हो जाएंगी....। समय जरूर लग सकता है।''

यह सुनते ही वृद्ध के चेहरे पर छाए उदासीनता के बादल कुछ छंट गए। उसने हाथ जोड़कर नलिनी को शुक्रिया अदा किया।

लेकिन नलिनी इन औपचारिकताओं पर ध्यान न देते हुए अपने काम में लग गई। तन, मन, धन से वृद्धा का इलाज करने लगी। सभी को लगा कि वह, इनके लिए इतना क्यों कर रही है? पर उसका, सबके प्रति सदा से ही सद्व्यवहार और अपनत्व की भावना को देखते हुए किसी को इस बात का उत्तर पाना उचित नहीं लगा।

परिणामस्वरूप वृद्धा स्वस्थ हो गई। उसके चेहरे पर चमक आ गई। यह देखकर वृद्ध भी पहले जैसा बूढ़ा नहीं लग रहा था।

पर वृद्धा के हास्पिटल से डिस्चार्ज होते समय वृद्ध और वृद्धा दुखी हो गए। वृद्धा ने नलिनी के सिर पर हाथ फेरते हुए आत्मीयता भरे स्वर में कहा—''आप धन्य हो, डाक्टरनी जी! वास्तव में आपने हमारी नि:स्वार्थ सेवा की....। ऐसी सेवा तो अपनी बेटी भी नहीं करती....।'' कहते-कहते वृद्धा की आंखें सजल हो गईं।

नलिनी चौंकी। मुस्कुराते हुए बोली—''मुझे अपनी बेटी ही समझो।''

''हमारे इतने अहोभाग्य कहां....?'' वृद्धा आगे न बोल सकी।

''तो सुनिए....मैं....मैं, आपकी ही बेटी हूं....नलिनी....।'' कहते-कहते नलिनी का गला भर गया। वह वृद्धा के गले जा लगी और बिलख-बिलख कर रो पड़ी। जैसे धैर्य का बांध टूटकर उसके रोके, न रुकने को मजबूर हो गया।

वृद्धा को लगा जैसे आज उसे सात जन्मों के पुण्यों का फल मिल गया। उसका भी अश्रु सागर उमड़ पड़ा। ममत्व से ओत-प्रोत होकर उसने उसे अपने वक्षस्थल में छिपा लिया।

पर वृद्ध ग्लानि से भर गया। अपने को धिक्कारते हुए वह बोला—''वास्तव में पापी तो मैं निकला, जिसने पहले तो बिजनैस में अचानक विशेष लाभ हो जाने के नशे में मां-बेटी को किसी हद तक एक दूसरे से अलग किया। फिर बेटा हो जाने के नशे में पूरी तरह अलग कर दिया....। उस दुष्ट तथा नालायक बेटे....।''

''ऐसा मत कहिए।'' नलिनी ने तनिक गर्दन ऊंची कर वृद्ध की ओर देखते हुए कहा—''आखिर मैं, आपकी बेटी हूं....। बेटी के सामने इस तरह की बातें....शोभा नहीं देती।''

अब सब खामोश थे। कुछ देर बाद वृद्धा ही बोली—''बेटी अब पुरानी बातें भूलकर, हमें माफ कर देना।''

''कैसी बात कह रही हो मां तुम भी....! सच मानो मेरे मन में अब आप लोगों के प्रति तनिक भी रोष नहीं है। नाना जी ने सदा ऐसी ही शिक्षा दी थी मुझे।''

''यह तो मैं सोचती ही थी....। अच्छा बेटी एक बात तो बता।''

''बोलो मां।''

''लगता है तूने, हमें पहले पहचान लिया था।''

''बेशक! तभी पूर्ण रूप से आश्वस्त होने के लिए, मैंने आपकी उस हालत में भी जानकारी ली।''

''तो फिर तूने, हमें अपने विषय में बताया क्यों नहीं?''

''सिर्फ इसलिए कि कहीं मैं, आपका स्नेह पाने से फिर वंचित न हो जाऊं।'' कहते-कहते नलिनी की आंखों से अश्रुकण ढुलकने लगे।

''ओह नलिनी!'' कहते-कहते वृद्धा भी अपने उमड़ते अश्रु मेघों को पुन: बरसने से रोक न सकी।

यह सब देखकर वृद्ध भी अपने पर काबू न रख सका। उसकी आंखें डबडबा आईं। वह अपलक नेत्रों से उन दोनों को देखता रहा। ❑

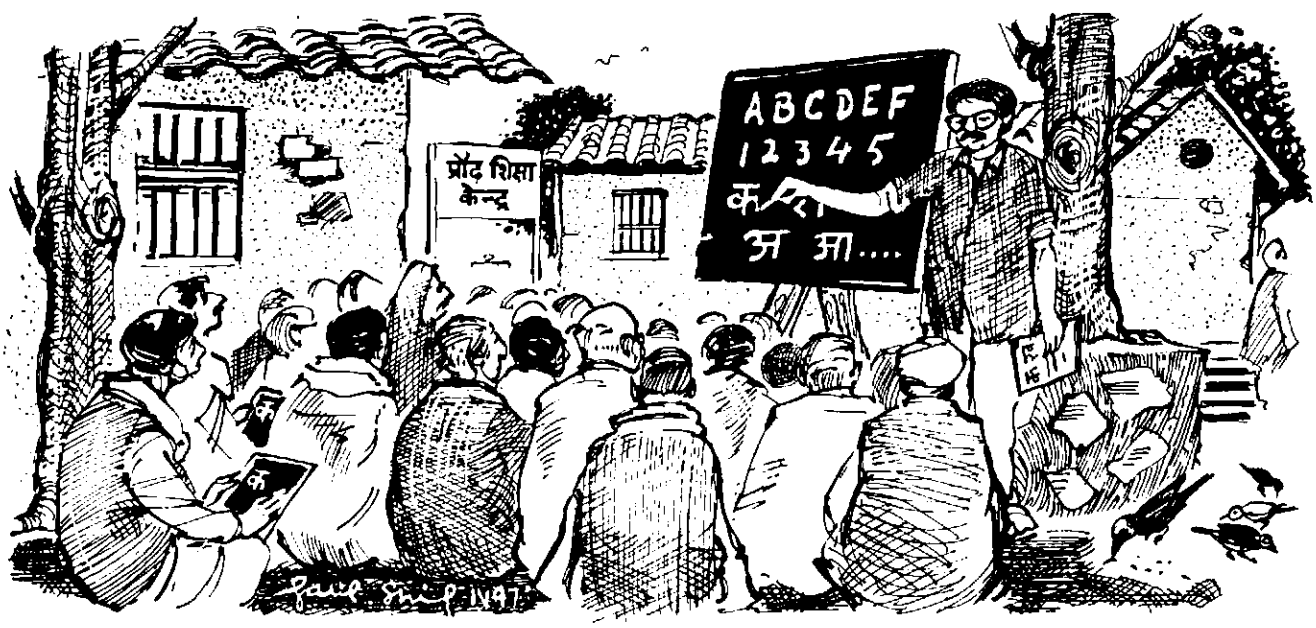

स्वतंत्रता के स्वर्ण जयन्ती वर्ष में

गणतंत्र दिवस के शुभ अवसर पर

तिरंगे को शत शत नमन

26 जनवरी, 1998

davp 97/ 620

पंचायती राज प्रबंधन और पशुधन विकास योजनाएं

डा. डी.डी. शुक्ला *

हमारे देश के ग्रामीणों का प्रमुख व्यवसाय कृषि तथा पशुपालन है। नई व्यवस्था के तहत पंचायती राज की स्थापना हो चुकी है जो गांधी जी का सपना था। ग्राम पंचायत को अपने ग्राम के विकास के लिए अधिकार प्रदत्त किए जा चुके हैं। ग्रामीण कृषकों के लिए उपयोगी पशुधन के विकास में भी पंचायत प्रतिनिधियों की अहम् भूमिका रहती है। यदि उनके द्वारा पशुधन विकास के कार्यों में सहयोग किया जाएगा तो निश्चित ही हमारा देश जो आज विश्व में दुग्ध उत्पादन के लिए द्वितीय स्थान रखता है, बीसवीं सदी के अंत तक प्रथम स्थान प्राप्त कर सकेगा और पूज्य बापू का कथन पूरा होगा कि "दुग्ध उत्पादन में डेनमार्क ही क्यों, भारतवर्ष इसका आदर्श होना चाहिए।"

प्रश्न उठता है कि पशुधन विकास के लिए पंचायती राज के प्रतिनिधियों द्वारा क्या कार्य किया जाए जिससे पशुओं का समुचित संरक्षण तथा संवर्धन हो सके।

पंचायती राज कानून में एक महत्वपूर्ण प्रावधान यह रखा गया है कि अब सभी तरह के ग्रामीण विकास कार्यक्रम पंचायत द्वारा निर्धारित, संचालित और क्रियान्वित किए जाएंगे। यह प्रावधान संविधान की ग्यारहवीं अनुसूची के अंतर्गत किया गया है जिसमें अन्य योजनाओं के साथ-साथ पशुपालन कार्यक्रम भी सम्मिलित है। पशुपालन कार्यक्रम को छोटे किसानों की आय में वृद्धि कर उन्हें गरीबी रेखा से ऊपर उठाने के लिए एक अच्छा व्यवसाय माना गया है जिसका लाभ छोटे किसान समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के माध्यम से ऋण तथा अनुदान सहायता से उठा रहे हैं और उनके सामाजिक तथा आर्थिक स्तर में सुधार हो रहा है। इस कार्य के लिए उपयुक्त व्यक्ति का ही बतौर हितग्राही चयन हो—यह बात पंचायती राज प्रतिनिधियों को ध्यान में रखनी है। तभी वह व्यक्ति योजना का सही लाभ उठा सकेगा और अनुदान राशि का दुरुपयोग रुक सकेगा।

योजनाओं की जानकारी हेतु शासकीय व्यवस्था

शासन द्वारा सरकारी कर्मचारी एवं अधिकारियों को योजनाओं की जानकारी तथा प्रशासन में पारदर्शिता लाने हेतु निर्देश दिए गए हैं। इससे सभी योजनाओं की जानकारी ग्राम पंचायत की बैठकों में दी जानी चाहिए। यदि किन्हीं कारणों से जानकारी प्राप्त नहीं होती है, तो पंचायती राज प्रबंधन के कार्यकर्त्ताओं को संबंधित जानकारी प्राप्त करने के लिए उपयुक्त शासकीय अधिकारियों को बुलाकर आयोजित संगोष्ठी में जानकारी देने की पहल करनी चाहिए। यह निर्विवाद सत्य है कि जिसके पास योजनाओं की जितनी ज्यादा जानकारी होगी, वही योजनाओं के क्रियान्वयन की पहल अच्छी तरह कर सकेगा और योजनाओं का लाभ ले सकेगा। पशु चिकित्सा तथा पशुपालन संबंधी योजनाओं की जानकारी प्राप्त करके देश के पशुधन का संवर्धन और संरक्षण कर, उनके द्वारा अधिक से अधिक उत्पादन करना हमारा लक्ष्य है।

बढ़ती मंहगाई और जनसंख्या के इस युग में पशु उत्पाद के माध्यम से तथा कृषि कार्य में सहयोग से हम इस विशाल समुदाय के भरण-पोषण में सक्षम हैं। अत: हमें पशुधन के संवर्धन के लिए योजनाओं की जानकारी तथा कार्यक्रमों में सक्रिय सहयोग प्रदान कर उसका लाभ प्राप्त करना चाहिए।

पशु संवर्धन हेतु बधियाकरण कार्यक्रम

हमारे देश में पशुपालकों का बधियाकरण कार्यक्रम में सक्रिय सहयोग न मिलने के कारण देशी नस्ल के पशुओं को बढ़ावा मिल रहा है और वे पशु झुंडों में रहकर पशुओं की नस्ल खराब कर रहे हैं। पशुओं में उत्पादक नस्ल पैदा हो, इसलिए पंचायती राज प्रबंधन के सदस्यों द्वारा पशुपालन विभाग के माध्यम से चलाए जा रहे बधियाकरण कार्यक्रम में ग्रामीण पशुपालकों को प्रेरित कर, उनके देशी नाटों को बधिया कराने में सहयोग प्रदान करना चाहिए जिससे वे कृषि कार्य हेतु बैल बन सकें और नस्ल को खराब न कर सकें। राष्ट्रीय जल ग्रहण क्षेत्रों में किसानों का चयन कर उन्हें बधियाकरण कार्य हेतु प्रशिक्षित किया जा रहा है, ताकि वे ग्रामीण अंचलों में पशु नस्ल सुधार अभियान के तहत देशी नाटों का बधियाकरण कर सकें।

पशु संरक्षण तथा पशु स्वास्थ्य रक्षा कार्यक्रम

जानकारी के अभाव में हम अपने पशुधन की रक्षा समुचित ढंग से नहीं कर सकते। अत: पशुओं को संक्रामक बीमारियों के प्रकोप से बचाने के लिए रोग प्रतिरोधक टीकाकरण कार्यक्रम सम्पन्न किया जाता है। प्रतिवर्ष बरसात के पूर्व नजदीकी पशु चिकित्सा संस्था में संपर्क कर, अपने पशुओं में गलघोंटू, एकटंगिया, छड जैसी संक्रामक बीमारियों का टीका लगवा लेना चाहिए जिससे होने वाली संभावित हानि से पशुधन को बचाया जा सके।

अक्सर देखा गया है कि पशुपालकों की धारणा रहती है कि पानी बरस जाने पर टीके लगवाए जाएंगे जो सर्वथा गलत है क्योंकि बरसात शुरू होने से घास का अंकुरण होता है जिसके माध्यम से रोगाणु शरीर के अंदर प्रवेश कर रोग फैलाते हैं। अत: बरसात के पूर्व ही टीकाकरण करवाने की व्यवस्था करनी चाहिए। इसके साथ ही जब टीकाकरण हेतु कार्यकर्त्ता ग्राम में कार्य करते हैं तो ग्रामीणों को उनके साथ सहयोग करना चाहिए। यदि कुछ पशुओं में टीका लगा और कुछ रह गए, तो भी उनमें रोग का संक्रमण हो सकता है और टीकाकरण के बाद भी बीमारी हो सकती है।

* पशु चिकित्सा सहायक शल्यज्ञ, छतरपुर, मध्य प्रदेश

पशु रोग नियंत्रण तथा रोकथाम के लिए पंचायती राज प्रबंधन के कार्यकर्त्ताओं को पशुपालकों को मृत पशुओं को दफनाने या जलाने तथा बीमार पशु के जूठे दाने, चारे आदि को जलाने और स्वच्छता हेतु प्रेरित करना चाहिए ताकि गांव के अन्य पशुओं को रोग के कीटाणु प्रभावित न कर सकें।

पशु चिकित्सा शिविरों का आयोजन

पशुओं को हानि से बचाने के लिए पशुओं की चिकित्सा परम आवश्यक है। सरकार द्वारा सहयोगी विभाग को औषधि तथा उपयुक्त औजारों के लिए निर्धारित बजट के आबंटन से उपेक्षित रखा जाता है जिससे पशु चिकित्सा संस्थाओं में दवाइयों का अभाव रहता है। ग्रामीण पशुपालकों को इसकी जानकारी नहीं रहती। इस संबंध में पंचायती राज प्रबंधन के सदस्यों द्वारा चिकित्सा संस्थाओं में चिकित्सा सुविधा हेतु बजट आबंटन की मांग करनी चाहिए।

पशु चिकित्सा कैम्पों के दौरान जो मादा बांझ पशु 2-3 वर्ष से गर्भ धारण नहीं कर रही हैं और पशु पालकों पर आर्थिक बोझ बनी हुई हैं, उनकी चिकित्सा करवानी चाहिए। कैम्प की सूचना पंचायत कार्यकर्त्ताओं द्वारा दी जानी चाहिए ताकि ज्यादा से ज्यादा ग्रामीण इन चिकित्सा कैम्पों का लाभ उठा सकें।

संस्थाओं में इलाज व्यवस्था तथा दवा और औजारों के रख-रखाव तथा शासकीय भवनों के निर्माण के लिए भी बजट आबंटन करने का प्रयास करना चाहिए ताकि नजदीकी पशु चिकित्सा संस्था इस काबिल हो जहां पर्याप्त दवा तथा औजार रखने की समुचित व्यवस्था उपलब्ध हो, तभी पशुधन की रक्षा हेतु पंचायती राज प्रबंधन की सक्रिय भागीदारी होगी।

गोचर भूमि तथा चरागाह व्यवस्था

प्रत्येक ग्राम में गोचर भूमि का आबंटन शासन द्वारा किया गया है जिसका उपयोग निजी कामों में किया जा रहा है। पशुओं के हितों को नहीं समझा जा रहा है जिससे पशुओं के टहलने और भोजन व्यवस्था में व्यवधान उत्पन्न हो रहा है। पंचायती राज प्रबंधन द्वारा जिसके पास भी ग्रामीण पशुओं के चरने हेतु गोचर भूमि हो, उससे चरागाह को मुक्त कराने की कार्यवाही करनी चाहिए। इसके लिए प्रशासन की मदद भी लेने में हिचकिचाना पशुधन के हितों को नजरंदाज करना होगा।

गोसदनों का क्रियाशील किया जाना

गोरक्षा और गोसेवा की भावना से जुड़े तथा देश के पशुधन के प्रति उदार हृदय होकर चलाए गए गोसदन दिन-प्रतिदिन निष्क्रिय होते जा रहे हैं। इन्हें क्रियाशील करने के लिए गोसेवा आयोग का गठन किया गया है। आयोग द्वारा निष्क्रिय गोशालाओं को सक्रिय करने का प्रयत्न किया जा रहा है। लेकिन यदि पंचायती राज प्रबंधन द्वारा इस कार्य में सहयोग दिया जाए तो निश्चित रूप से गोशालाओं का लुप्त होता स्वरूप पुनः जीवित हो सकेगा। इससे हम बेजुबान पशुओं के वध जैसे जघन्य कृत्यों पर काबू पा सकेंगे जो हमारे पूज्य बापू और विनोबा जी की आत्मा को शांति प्रदान कर सकेगा। साथ ही मनुष्यों द्वारा पशुओं की हत्या और अत्याचार का प्रायश्चित होगा। ❑

पृष्ठ 2 का शेष **(पाठकों के पत्र.....)**

ओजोन महाविनाश के रक्षार्थ

मैं *कुरुक्षेत्र* का नियमित पाठक हूं। दिसंबर माह के अंक में डा. वीणा पाणि सिंह का लेख *ओजोन परत* पढ़ा, बेहद समसामयिक और ज्ञानवर्द्धक लगा।

निःसंदेह ओजोन परत प्रकृति का वह आंचल है जिससे इस दुनिया के जीवन की रक्षा होती है और सूर्य की अल्ट्रा वायलेट किरणों के ताप को ओजोन परत स्थानांतरित कर पृथ्वी के लिए वायु धाराओं और जलवायु के निर्माण में मदद करती है। लेकिन विडम्बना ही है कि इस भौतिकवादी युग में पल-प्रतिपल विकासवाद, आर्थिक समृद्धि, औद्योगीकरण और वर्चस्व स्थापन की अंधी दौड़ में मानव ने धरा पर जहर के इतने बीज बो दिए हैं कि आज वसुन्धरा का भविष्य ही आशंकाओं के घेरे में आ गया है। हालांकि इस महाविनाश के रक्षार्थ विश्व के विकसित राष्ट्रों के बीच 'मोंट्रियल प्रोटोकाल' नामक एक समझौता हुआ जिसके तहत घातक रसायनों का उत्पाद एक निश्चित समय के अंदर बंद करने पर आम राय बनी लेकिन धन की हवस ने उन्हें इस महाविनाश को रोकने के उपाय करने की तरफ ज्यादा कुछ सोचने का वक्त नहीं दिया। उपभोक्तावादी संस्कृति को पैदा कर और धन के नशे में मशगूल इन धृतराष्ट्रों को नजर नहीं आ रहा है कि प्रकृति के प्रकोप का लावा जिस दिन फूटेगा, उस दिन अल्प-विकसित तथा विकासशील राष्ट्रों के गरीब मारे जाएंगे तो विकसित राष्ट्रों के धनाढ्य वर्ग भी अपने को स्वर्ण महलों में बचा पाएगा क्या?

हर्ष वर्द्धन कुमार, सृष्टि रूपा भवन, लोहानीपुर, पटना

पत्रिका अपने उद्देश्य के प्रति सजग

कुरुक्षेत्र का सितम्बर 1997 अंक हस्तगत हुआ। आद्योपांत अध्ययन के पश्चात पाया कि यह ग्राम्य जीवन से संबंधित तमाम कटु-मधुर सत्यों को अपने अंदर समेट कर अपने उद्देश्य के प्रति पूरी तरह सजग है। पत्रिका की उपयोगिता को देखते हुए 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' कहना अतिशयोक्ति न होगी।

वैसे तो सभी लेखकों के विचार सराहनीय, ज्ञानवर्द्धक और सटीक हैं परंतु डा. दिनेश मणि द्वारा व्यक्त विचार बहुत प्रभावशाली हैं जो हमें अपनी संस्कृति-रक्षा के प्रति जागरूक करते हैं। सचमुच, भारतीय सभ्यता-संस्कृति, संक्रमण काल में है। संस्कृति प्रदूषण सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रहा है। आवश्यकता है निःस्वार्थ भाव से भारत और भारतीयता की रक्षा हेतु जागरूक होने की।

पंकज कुमार, चकवा, बथनाहा, सीतामढ़ी, बिहार

ग्रामीण बेकारी : स्थिति और उपाय

शिशिर कुमार चौरसिया

महात्मा गांधी ने कहा था—'भारत का विकास तब तक नहीं हो सकता है जब तक हमारे गांव आत्मनिर्भर नहीं हो जाते।' अर्थात उन्होंने ग्रामीण विकास के महत्व को सही पहचाना। इसी उद्देश्य से उन्होंने सेवाग्राम परियोजना भी शुरू की थी। आजादी के बाद ग्रामीण विकास के लिए अनेक कार्यक्रम चलाए गए, उदाहरण के लिए—समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, सूखा प्रवण क्षेत्र कार्यक्रम, ग्रामीण भूमिहीन रोजगार योजना, ट्रायसेम आदि।

इन योजनाओं पर दृष्टिपात करें तो लगता है कि इनमें रोजगार जुटाने पर विशेष बल दिया गया है। कुछ योजनाओं में काम के बदले अनाज भी दिया गया, प्रशिक्षणोपरांत ऋण की व्यवस्था भी की गई। यानी प्रत्येक योजना की अपनी-अपनी विशेषताएं थीं।

आठवीं पंचवर्षीय योजना के दस्तावेज पर गौर करें तो पता चलता है कि पिछले दो दशकों में रोजगार के अवसरों में 2.2 प्रतिशत वृद्धि प्रतिवर्ष हुई जबकि श्रम शक्ति में वृद्धि की दर 2.5 प्रतिशत रही यानी बेरोजगारों की फौज तेजी से बढ़ रही है। विशेषज्ञों की समिति का अनुमान है कि 1993-94 में ग्रामीण क्षेत्र में 32.27 प्रतिशत लोग बेरोजगार थे। वैसे ग्रामीण क्षेत्र में बेरोजगारी का सही-सही अनुमान मुश्किल है क्योंकि वहां छिपी हुई बेरोजगार पाई जाती है।

सरकार द्वारा गांवों में चलाए जा रहे कार्यक्रमों का मूल्यांकन सरकारी एवं गैर-सरकारी दोनों स्तरों पर हुआ। सरकारी मूल्यांकन में कहा गया—'इन कार्यक्रमों ने व्यय और रोजगार पैदा करने के मामलों में कमोवेश अपने लक्ष्य प्राप्त कर लिए हैं। परंतु इस बात की भी शंका है कि लाभार्थियों को जितना लाभ पहुंचाने का दावा किया गया है, उन्हें उतना लाभ पहुंचा भी हो।' इस वक्तव्य से भी योजना की प्रभावशीलता का अनुमान लगाया जा सकता है।

योजना आयोग के भूतपूर्व सदस्य डा. एल.सी. जैन ने एक बार कहा था—''सबसे गंभीर संकट जो आज भारतीय राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के सामने है, वह बढ़ती हुई बेरोजगारी है। ग्रामीण परिदृश्य तो और भयावह है।'' जैन साहब के इस कथन से ग्रामीण क्षेत्र में व्याप्त बेरोजगारी का कुछ खाका मिल जाता है।

योजनाबद्ध विकास के पांच दशक बीत जाने के बाद इस पर विचार किया गया है कि योजना क्रियान्वयन में क्या चूक हुई, क्यों हम लक्ष्य प्राप्ति में असफल रहे और इस असफलता से क्या सीख सकते हैं। इन विविध बातों पर विचार कर योजना आयोग ने अपनी रणनीति में बदलाव लाने का निर्णय लिया। सन् 2000 तक पूर्ण रोजगार के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए विकास रणनीति हेतु निम्न सुझाव दिए:

- आर्थिक संवृद्धि मुख्यत: उन क्षेत्रों से प्राप्त की जानी चाहिए जिनमें अधिक रोजगार क्षमता विद्यमान है और भविष्य में भी अधिक रोजगार क्षमता बने रहने की संभावना है।
- संपूर्ण मांग एवं पूर्ति के संतुलन के सीमा-बंधन को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक क्षेत्र में ऐसी वस्तुओं और उत्पादन प्रणालियों को उच्च प्राथमिकता देनी होगी जिनसे रोजगार बढ़ने की संभावना अधिक है।
- विभिन्न उत्पादन प्रणालियों में जहां कहीं भी संभव हो, ऐसी उत्पादक तकनीकों को प्रोत्साहन देना होगा जिनमें पूंजी की प्रति इकाई से अधिक रोजगार के अवसर प्राप्त हों और पूंजी गहनता में अंधाधुंध और प्राय: अनावश्यक वृद्धि को निरुत्साहित करना होगा।
- सार्वजनिक क्षेत्र के विनियोग को रोजगार प्रोत्साहन क्षेत्रों में प्रेरित करने के अतिरिक्त राजकोषीय एवं ऋण नीतियों का प्रयोग गैर-सरकारी क्षेत्र के विनियोग को इस प्रकार प्रभावित करने के लिए करना होगा कि इससे ऐसे क्षेत्रों एवं तकनीक को बढ़ावा मिले जिससे रोजगार क्षमता तेजी से बढ़े।

इनका सार यह निकलता है कि उत्पादक रोजगार के अवसरों को तेजी से सृजित करना गरीबी कम करने का सर्वोत्तम उपाय है।

ग्रामीण क्षेत्रों में इन सुझावों को ध्यान में रखते हुए निम्न रणनीति अपनाई जानी चाहिए। सुविधा के लिए संभावना के दो क्षेत्र बना लें—कृषि एवं संबद्ध क्षेत्र और ग्रामोद्योग।

कृषि एवं संबद्ध क्षेत्र

ऐसा देखने में आया है कि जैसे-जैसे कृषि उत्पादकता में वृद्धि आती गई, वैसे-वैसे रोजगार में गिरावट होती गई। प्रति हेक्टेयर श्रम प्रयोग 1974-75 से 1994-95 के दौरान पंजाब में 76 से घटकर 64, हरियाणा में 57 से 54 और उत्तर प्रदेश में 89 से घटकर 86 हो गया। देश के आठ राज्यों—आंध्र प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल में देश के कुल बेरोजगारों का 70 प्रतिशत निवास करता है। यदि यहां की बेरोजगारी दर को कम करना है तो कृषि में श्रम के गिरावट की प्रवृत्ति को रोकना होगा।

यह देखा गया है कि बिना सिंचाई वाले क्षेत्र की तुलना में सिंचाई वाले क्षेत्र में प्रति हेक्टेयर 50 से 150 अतिरिक्त श्रमिकों का प्रयोग होता है। अत: विकास के साथ रोजगार की रणनीति की सफलता के लिए यह

आवश्यक है कि देश में सिंचाई का विस्तार किया जाए। उसमें भी छोटी सिंचाई परियोजनाओं पर अधिक जोर दिया जाना चाहिए।

खेतों में उगाए जाने वाली फसलों के चयन में भी बदलाव लाना होगा। सब्जियों और फलों के उत्पादन में अधिक श्रम लगता है। साथ ही अधिक कीमत भी मिलती है। हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश एवं जम्मू-कश्मीर में किए गए अध्ययनों से यह तथ्य सामने आया कि सेबों पर प्रति हेक्टेयर 180 श्रम दिवस और आमों में 123 श्रम दिवस लगते हैं। इसमें यदि विपणन और प्रसंस्करण के कार्य को भी जोड़ दें तो श्रम दिवसों की संख्या काफी बढ़ जाएगी।

अन्य संबंधित कृषि कार्य जिससे अधिक रोजगार का सृजन होता है, वे हैं—पशु पालन और मछली पालन। कृषि पर राष्ट्रीय आयोग द्वारा इस्तेमाल किए गए मानदंड के आधार पर यह अनुमान लगाया गया है कि पशु पालन एवं मछली पालन में 1990-95 की अवधि में 615 लाख श्रम दिवस प्रतिवर्ष रोजगार का सृजन हुआ। विपणन एवं प्रसंस्करण को इससे अलग रखा गया है।

इन्हीं सब तथ्यों के आधार पर योजना आयोग ने कहा है—'यदि क्षेत्रीय दृष्टि से विस्तृत लगभग 4 प्रतिशत की वृद्धि दर के साथ अधिक मूल्य वाली फसलों अर्थात फलों, सब्जियों एवं नकदी फसलों की खेती को बढ़ावा दिया जाए और पशुपालन में 5 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर का लक्ष्य रखा जाए, तो कृषि एवं संबद्ध क्षेत्रों में रोजगार की 2.5 प्रतिशत की वृद्धि दर प्राप्त की जा सकेगी।

ग्रामीण औद्योगीकरण

ग्रामीण बेकारी को दूर करने में ग्रामोद्योग की महती भूमिका है। प्रश्न उठता है कि ऐसे उद्योगों का निर्धारण कैसे हो जो रोजगार की दृष्टि से लाभप्रद हों। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ग्रामीण क्षेत्रों का तकनीकी आर्थिक सर्वेक्षण कराया जाना चाहिए ताकि विभिन्न क्षेत्रों की आवश्यकताओं और क्षमताओं का अनुमान लगाया जा सके। पहले कृषि उत्पादित वस्तुओं का प्रसंस्करण नगरों में किया जाता था, अब यह महसूस किया जाने लगा है कि इनका प्रसंस्करण गांवों में ही होना चाहिए। इसके लिए सरकार को प्रशासनिक, तकनीकी, वित्तीय एवं संगठनात्मक सहायता देनी होगी। अभी तक रोजगार सृजित करने के लिए चलाई गई सरकारी योजनाओं से लोगों के मन में जो मनोवृत्ति पनपी, वह आत्म-पोषित विकास के मार्ग में रुकावट बन गई है। इसमें नौकरशाही के नियंत्रण को प्राथमिकता दी गई है जिससे ठेकेदारों या बड़े आदमियों को ही लाभ पहुंचा। इस दृष्टि से सरकार को चाहिए कि वह सिंचाई, ग्रामीण विद्युतीकरण, सड़क निर्माण जैसी बुनियादी सेवाओं की व्यवस्था करे।

ग्रामोद्योग कार्यक्रम में निम्नांकित उद्योगों को लगाने की व्यावहारिकता पर विचार करना चाहिए:

कृषि उत्पाद का प्रसंस्करण: इसके अंतर्गत धान से चावल का निकालना, रूई से बिनौले निकालना, दूध एवं दूध से बनी वस्तुएं तैयार करना और पटसन से निर्मित वस्तुओं आदि को शामिल किया जा सकता है।

फलों एवं सब्जियों का प्रसंस्करण एवं डिब्बाबंदी: बहुत-से व्यक्तियों को फल एवं सब्जियों की डिब्बाबंदी, संरक्षण, मुरब्बा-अचार एवं अन्य खाद्य पदार्थों को बनाने में काफी बड़े पैमाने पर रोजगार के अवसर जुटाए जा सकते हैं।

कृषि उप-उत्पाद के प्रयोग के लिए उद्योग: हम ये तो जानते हैं कि बहुत-से कृषि उप-उत्पाद का विनिर्माण उद्योग में कच्चे माल के रूप में प्रयोग किया जाता है। थोड़ी-सी खोज-बीन करें तो और भी संभावनाएं नजर आएंगी, जैसे— शीरे से अल्कोहल, गन्ने की खोई से कागज, चावल की भूसी का ईंधन बनाकर प्रयोग, चावल के चोकर से तेल निकालने का उद्योग आदि स्थापित किए जा सकते हैं।

परंपरागत हस्तशिल्प, कुटीर एवं लघु उद्योग: सरकार के सहयोग से और कुछ चतुर व्यापारियों के प्रताप से, अब हस्तशिल्प की वस्तुएं विदेशी मुद्रा भी अर्जित करने लगी हैं। यह एक अच्छा संकेत है जो इंगित करता है कि कुटीर तथा हस्तशिल्प के क्षेत्र में भारी संभावनाएं विद्यमान हैं। इसके साथ-साथ लघु उद्योग में किसान अपनी आवश्यकता की वस्तुओं का भी उत्पादन कर सकते हैं।

योजना आयोग ने हाल ही में ऐसे उद्योग समूहों की पहचान की है जिसमें रोजगार क्षमता तो अधिक है पर वर्तमान पूंजी उत्पाद अनुपात कम है। वे हैं— मछली की डिब्बाबंदी और संरक्षण, बेकरी, चीनी और खांडसारी का उत्पादन, रूई से बिनौले निकालना, छपाई और रंगाई, खादी हथकरघा सूती वस्त्र, पावरलूम, ऊन कताई और बुनाई (कारखानों को छोड़कर) ऊनी वस्त्रों की रंगाई एवं विरंजन, चमड़े की वस्तुएं, दियासलाई, सूती वस्त्र, फलों एवं सब्जियों की डिब्बाबंदी, पटसन और मेस्ता की वस्तुएं, शीशा और शीशे की वस्तुएं। यदि इस तरह के उद्योग ग्रामीण क्षेत्र में लगाए जाएं तो बेकारी का तेजी से खात्मा हो सकता है।

नई आर्थिक नीति के फलस्वरूप जो परिदृश्य उभर कर सामने आया है, वह रोजगार-विहीन विकास का है। अभी जो स्थायीकरण प्रोग्राम चलाया जा रहा है, उसके परिणामस्वरूप बेकारी दर 1991-92 के 4 प्रतिशत से बढ़कर 5 प्रतिशत हो गई है। यह गांव से पलायन के लिए भी उत्तरदायी है। यदि गांवों से पलायनवादी प्रवृत्ति को रोकना है और गांवों को आत्मनिर्भर बनाना है तो उपर्युक्त नीति पर अमल करने की तुरंत आवश्यकता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में दुग्ध सहकारी समितियों का सामाजिक प्रभाव

सुशील कुमार राय*

वर्तमान संदर्भों में सहकारिता को समाज तथा देश के योजनाबद्ध आर्थिक और सामाजिक विकास की अवधारणा में एक विशेष सर्वोत्कृष्ट अभिकरण स्वीकारने में हिचक नहीं होती, क्योंकि सहकारिता के मान्य सिद्धांत ही सर्वोदयी और सामाजिक विकास की भावना से जुड़े हैं। पारस्परिक सहयोग तथा सहकार से ही समूह एवं समाज की प्रगति और विकास की उम्मीद की जा सकती है।

भारत के अनेक राज्यों का सहकारी आंदोलन अपनी कतिपय विशिष्टताओं के लिए विश्वविख्यात हैं। गुजरात का आनंद डेयरी सहकारिता पर आधारित अमूल उत्पादन सहकारी उपक्रमों की गौरवगाथा में एक कीर्ति- स्तंभ है। डेयरी सहकारिता से समाज के अंतिम छोर पर खड़े व्यक्ति से लेकर अति विशिष्ट व्यक्ति को भी किसी न किसी रूप में सामाजिक तथा आर्थिक लाभ प्राप्त हुआ है। उदाहरण के लिए, मध्य प्रदेश दुग्ध विकास योजना जिसे आप्रेशन फ्लड के नाम से जाना जाता है, के अंतर्गत सहकारिता के आधार पर ग्रामीण क्षेत्र में सहकारी दुग्ध समितियों का गठन ढाई दशक पूर्व प्रारंभ किया गया और यह क्रम योजना के अनुरूप जारी है। महासंघ द्वारा निर्धारित नीति के अनुसार ये समितियां दुग्ध संघ के नियंत्रण में कार्य करती हैं। इन सहकारी समितियों को कार्य करते हुए 25 वर्ष हो गए हैं। इनके कार्यों का समाज पर किस प्रकार का प्रभाव पड़ा है? इसके आकलन के लिए उज्जैन जिले की खाचरौद तथा बड़नगर तहसील की दुग्ध सहकारी समितियों के सदस्यों से प्रत्यक्ष जानकारी और व्यक्तिगत साक्षात्कार के माध्यम से इस लेख में इसके सामाजिक प्रभाव को दर्शाने का प्रयत्न किया है।

छूआछूत में कमी

दुग्ध के सहकारी क्षेत्र में विपणन के कारण गांवों में छूआछूत में कमी आई है। पहले अछूत समझी जाने वाली जाति के यहां से दुग्ध तथा अन्य उपभोग वस्तुओं का अन्य जाति के व्यक्ति प्रयोग नहीं करते थे। इस कारण अनुसूचित जाति के यहां उत्पादित दूध का विक्रय समाज में प्रतिबंधित था, किंतु अब यह स्थिति बदल गई है। समिति के संकलन केन्द्रों पर सभी जाति तथा समुदाय के व्यक्ति पंक्तिबद्ध होकर एक साथ समिति को दूध का विक्रय करते हैं और ये समितियां भी भेदभाव के बिना सहकारिता के आधार पर सभी सदस्यों से समान व्यवहार करके उनके द्वारा विक्रय किए जाने वाले दूध को खरीदती हैं। इस प्रकार इन जातियों को अब अन्य जातियों के बराबर अवसर प्राप्त होते हैं।

ग्रामीण महिलाओं की सामाजिक स्थिति में सुधार

दुग्ध उत्पादक सहकारी समितियों के कार्य प्रारंभ करने से पूर्व तक ग्रामीण व्यक्ति अपने परिवार की महिलाओं को संस्थाओं के कार्यालयों पर भेजना अपनी मर्यादाओं के विरुद्ध मानते थे, परंतु दुग्ध उत्पादक सहकारी समितियों के द्वारा अब समाज में महिलाओं की स्थिति में थोड़ा परिवर्तन आया है। पशुओं के रख-रखाव से लेकर समिति के संकलन केन्द्रों पर दुग्ध नापने तक के सभी कार्य अब धीरे-धीरे महिलाएं करने लगी हैं। भुगतान लेने, पशु आहार, घी, घास, बीज आदि वस्तुओं को खरीदने के लिए भी महिलाएं, समिति कार्यालयों तक आने में संकोच नहीं करतीं। ग्रामीण व्यक्ति भी अब महिलाओं द्वारा किए जाने वाले इन कार्यों को अपनी मर्यादा के विरुद्ध नहीं मानते। इस प्रकार सहकारी विपणन के कारण ग्रामीण अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी ग्रामीण विकास और समाज के लिए एक शुभ संकेत है।

रूढ़िवादी परंपराओं में कमी

भारतीय कृषक अंध विश्वासी तथा रूढ़िवादी होते हैं और कृषि तथा पशुपालन कार्यों के लिए परंपरागत तरीकों का ही उपयोग करते हैं किंतु दुग्ध सहकारी समिति के कार्यक्षेत्र वाले कृषकों में यह भावना अब

(शेष पृष्ठ 25 पर)

*शोध छात्र, डा. बाबा साहेब आम्बेडकर राष्ट्रीय सामाजिक विज्ञान संस्थान, महू, म.प्र.

क्या बालिका समृद्धि योजना से सुधरेगी बच्चियों की दशा

डा. महीपाल

लड़कियों की दशा सुधारने के लिए पिछले 50 वर्षों में विभिन्न प्रयास किए गए लेकिन निष्कर्ष यह है कि स्त्रियों में साक्षरता प्रतिशत 39.29 है जबकि पुरुषों में 64.13 प्रतिशत है। अगर समाज के गरीब तबके में महिलाओं की साक्षरता दर देखें तो स्थिति और भी गंभीर है क्योंकि अनुसूचित जाति व जनजाति में साक्षरता दर राष्ट्रीय स्तर पर क्रमश: 23.76 प्रतिशत और 18.19 प्रतिशत ही है। कुछ राज्य जैसे बिहार और राजस्थान में तो अनुसूचित जाति की महिलाओं में साक्षरता दर क्रमश: 7.07 और 8.31 प्रतिशत है। राजस्थान में तो अनुसूचित जनजाति में साक्षरता दर मात्र 4.42 प्रतिशत ही है। यही नहीं लड़कियों को अशुभ, महत्वहीन और दोयम समझा जाता है। उनको पर्याप्त मात्रा में ऊर्जा व प्रोटीन भी प्राप्त नहीं होता। उदाहरण के लिए 1 से 3 वर्ष की लड़कियों के लिए निर्धारित ऊर्जा 1,050 किलो कैलोरी प्रतिदिन मिलने के बजाय 773 किलो कैलोरी ही मिलती है। प्रोटीन प्रतिदिन 22.5 ग्राम मिलने के बजाय 21.9 ही मिलता है। लड़कियों की मृत्यु-दर भी लड़कों की अपेक्षा अधिक है।

प्रधानमंत्री श्री इंद्र कुमार गुजराल ने गत वर्ष 15 अगस्त को लालकिले से अपने संबोधन में बच्चियों की दशा सुधारने के लिए बालिका समृद्धि योजना की घोषणा की ताकि लड़कियों के प्रति समाज का दृष्टिकोण बदले, लड़कियां अधिक संख्या में स्कूलों में जाएं, उनकी कम उम्र में होने वाली शादी को रोका जाए तथा कुल मिलाकर लड़कियों का समाज में स्तर बढ़े। इरादा नेक है। योजना का दिल्ली के एक गांव निथोली में शुभारंभ किया गया। इस योजना के तहत वे गरीब परिवार जो गरीबी रेखा से नीचे रह रहे हैं उनको एक मुश्त 500 रुपये की सहायता देने का प्रावधान है तथा जब लड़की पढ़ना शुरू कर देगी तब उस लड़की के परिवार को प्राथमिक स्तर तक 500 रुपये प्रति वर्ष तथा माध्यमिक स्तर पर 1,000 रुपये प्रतिवर्ष दिया जाएगा।

इस योजना की कई दृष्टिकोणों से समीक्षा करना आवश्यक है।

केन्द्र पोषित योजनाएं ज्यादा लागू न की जाएं

प्रथम नौवीं योजना के प्रारूप पत्र में संघवाद को बढ़ाने पर जोर दिया गया है। जिसका अर्थ है कि केन्द्र, राज्यों, पंचायतों व नगरपालिकाओं को अपने अधिकार क्षेत्र में कार्य करने की स्वायत्तता होनी चाहिए। लेकिन केन्द्र ने 73वें व 74वें संविधान संशोधन के बाद ऐसी अनेक केन्द्र पोषित योजनाएं लागू की हैं जो राज्य व पंचायतों के कार्य क्षेत्र की हैं। सरकार ने फरवरी 1997 में 'गंगा कल्याण योजना' शुरू की। पहले ही 1995-96 में केन्द्र पोषित योजनाओं की संख्या 182 थी जिनका वार्षिक परिव्यय 16,000 करोड़ रुपये था। केन्द्र पोषित योजनाओं के बारे में नौवीं योजना का प्रारूप पत्र कहता है कि सैद्धांतिक रूप से एक से अधिक राज्यों से संबंधित, देश की सुरक्षा को खतरे से संबंधित, चुनी हुई राष्ट्रीय प्राथमिकता जहां केन्द्र का नियंत्रण आवश्यक है या वे योजनाएं जिनमें विदेशी साधन शामिल हों, के लिए ही केन्द्र पोषित योजनाएं लागू की जा सकती हैं। बालिका समृद्धि योजना में उपरोक्त में से कोई शर्त लागू नहीं होती। अत: केन्द्र द्वारा इस योजना को लागू करना सैद्धांतिक रूप से ठीक नहीं है।

योजना की राशि स्थानीय सरकार के बजट में डाली जाए

दूसरे, जब आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय की योजनाएं जिनमें शिक्षा, स्वास्थ्य, कल्याण आदि सभी शामिल हैं, की जिम्मेदारी 73वें व 74वें संविधान संशोधन की धारा 243 जी. तथा 243 डब्ल्यू. द्वारा पंचायतों व नगरपालिकाओं को हस्तांतरित कर दी गई हैं तो केन्द्र पोषित योजनाएं घोषित करने की क्या आवश्यकता है? फिर बालिका समृद्धि योजना जैसे कि समाचार पत्रों के माध्यम से सुनने में आया है कि पंचायतों और नगरपालिकाओं द्वारा लागू की जाएगी। वैसे तो जो मार्ग-दर्शिका बनाई जा

रही है, उससे ही पता चलेगा की लागू करने में निर्णायक भूमिका पंचायतों की होगी या जिले की नौकरशाही ही होगी। लेकिन जब योजना को पंचायतों व नगरपालिकाओं ने लागू करना है तो 1,400 करोड़ रुपये की राशि राज्य द्वारा स्थानीय सरकार के बजट में स्थानांतरित क्यों नहीं की गई?

शिक्षा का उचित वातावरण हो

तीसरे, इस तरह की योजनाएं समस्या का समाधान नहीं करतीं। लड़कियों और लड़कों के स्कूल न जाने की वजह कुछ और ही है। जरूरत है शिक्षा की पूर्ति और पात्र पक्षों में सुधार करने की। प्रतिवर्ष राष्ट्रीय सर्वेक्षण के अनुसार 10.25 प्रतिशत बच्चे स्कूली सुविधाएं न होने के कारण स्कूल नहीं जाते, 29.46 प्रतिशत बच्चों की स्कूल जाने में रुचि नहीं है अर्थात 40 प्रतिशत बच्चे स्कूलों में उचित सुविधा न होने के कारण, अध्यापक का उचित व्यवहार न होने के कारण और अध्यापकों की उचित उपलब्धता न होने के कारण पढ़ने नहीं जाते। इसके अलावा जहां अध्यापकों की संख्या पूरी होती भी है, वहां अध्यापक बच्चों के साथ उचित व्यवहार नहीं कर पाते। उदाहरण के लिए दिल्ली नगर निगम के 250 प्राथमिक स्कूलों के अध्यापकों का अध्ययन बताता है कि लगभग 94 प्रतिशत अध्यापक इसलिए अपने कार्य से परेशान हैं कि विद्यार्थी कमजोर तबकों से आते हैं। जब बच्चों व अध्यापकों में उचित संवाद नहीं होगा तो चाहे कितने ही पैसे गरीब परिवारों को दे दिए जाएं, लड़कियां पढ़ने नहीं जाएंगी। हां, स्कूलों में उनका नाम अवश्य दर्ज होगा। इसलिए शिक्षा का उचित वातावरण बनाया जाना चाहिए ताकि स्कूलों के प्रति बच्चियां आकर्षित हों। समस्या का दूसरा पक्ष है कि लगभग 46 प्रतिशत बच्चे अपनी आर्थिक मजबूरियों के कारण स्कूल नहीं जाते। मांग पक्ष को मजबूत करने के लिए रोजगार के अवसर बढ़ाकर गरीब परिवारों की आर्थिक समृद्धि जरूरी है। खैरात बांट कर लड़कियां शिक्षित नहीं होंगी। लेखक ने महिला पंचायत प्रतिनिधियों के चार प्रशिक्षण व जागरूकता शिविर पश्चिम उत्तर प्रदेश में लगाए थे। उन शिविरों में जब महिला प्रतिनिधियों से पूछा गया कि वे लड़कियों को स्कूल क्यों नहीं भेज रही हैं तो उनका जवाब था कि एक तो स्कूल जाने-आने के रास्ते लड़कियों के लिए सुरक्षित नहीं हैं, दूसरा स्कूल में अध्यापक ही बच्चियों के साथ दुर्व्यवहार करते हैं। रास्ते असुरक्षित हैं। लड़कियों को स्कूल भेजने से लेकर जब तक घर नहीं आतीं तो कलेजे में धुक-धुक रहती है। इसलिए इज्जत जाने से तो अच्छा है कि लड़कियां अनपढ़ ही रहें क्योंकि अगर लड़की को कुछ हो गया तो उससे शादी तो कोई करेगा ही नहीं, उसके अलावा हम समाज में मुंह दिखाने लायक नहीं रहेंगे। यह है सामाजिक सच्चाई जिसमें 500 रुपये या 1,000 रुपये देने से दूर नहीं किया जा सकता। इसलिए पैसा परिवारों को न देकर स्कूलों की संरचना, प्रबंधन व बच्चियों की सुरक्षा पर खर्च करना चाहिए।

इस योजना से लाभ होने के बजाय और अधिक भ्रष्टाचार बढ़ेगा। सरकारी कर्मचारी जैसे पंचायत सचिव या ग्राम विकास अधिकारी लाभार्थी परिवारों को कहेगा कि 500 या 1,000 रुपये में से आधे तुम रख लो और आधे मुझे दे दो। तुम्हें 250 रुपये या 500 रुपये फ्री में ही तो मिल रहे हैं। दोपहर में खाना देने की योजना जो अगस्त 1995 में शुरू की थी उसका भी हाल बेहाल है। स्कीम में तो तैयार खाना प्रदान करने की बात कही है

सदस्यता कूपन

मैं/हम कुरुक्षेत्र का नियमित ग्राहक बनना चाहता हूं/चाहते हैं।

शुल्क : एक वर्ष के लिए 50 रुपये का
दो वर्ष के लिए 95 रुपये का
तीन वर्ष के लिए 135 रुपये का

(जो लागू नहीं होता, उसे कृपया काट दें)

डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर क्रमांक ..... दिनांक ..... संलग्न है।

नाम (स्पष्ट अक्षरों में) .....

पता .....

.....

पिन .....

इस कूपन को काटिए और इस पृष्ठ की पिछली ओर बाक्स नं. 4 में दिए गए पते पर भेजिए।

लेकिन सभी राज्यों में पका खाना नहीं मिलता। अभी हाल में नई दिल्ली में संपन्न एक सेमीनार में सहकारी राष्ट्रीय लोक व बाल विकास संस्थान की उपाध्यक्षा ने योजना का भांडा फोड़ते हुए कहा कि लाभार्थियों को मिलता तो है 1 किलो अनाज लेकिन रजिस्टर में 5 किलो दर्ज किया जाता है। कोई आश्चर्य की बात नहीं यदि यही स्थिति बालिका समृद्धि योजना की भी हो।

पंचायतों को सशक्त किया जाए

लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि इस समस्या का समाधान ही नहीं है। इसका इलाज पंचायतों व नगरपालिकाओं को सशक्त करने में है, जिनमें महिलाओं को एक-तिहाई आरक्षण मिला है। पंचायतों के अध्यक्ष व सदस्य के रूप में जो महिलाएं चुन कर आईं, वे ज्यादातर अशिक्षित हैं। अशिक्षित होने के कारण वे लगभग अपने पतियों व ग्राम के संपन्न वर्ग के हाथों में कठपुतली मात्र हैं। उन्हें अपनी बेबसी की स्थिति का बोध है। वे देख रही हैं कि यदि उन्होंने लड़कियों को नहीं पढ़ाया और उनकी बच्चियां भी उनकी तरह अनपढ़ रहीं तो वे भी इसी तरह कठपुतली रहेंगी। लेखक को रिवाड़ी जिले का एक दृश्य याद आता है जब वह नव-निर्वाचित महिलाओं को प्रशिक्षण दे रहे थे, उनमें एक महिला अनुसूचित जाति की थी, जो अनपढ़ थी। वह बड़ी परेशान सी नजर आ रही थी। लेखक ने पूछा "ताई क्या बात है।" उसने कहा, "भाई मने, के बेरा था। म्हारो भी राज आएगा।" (मुझे पता नहीं था कि हमारा भी राज आएगा नहीं तो मैं पढ़ती)। लेखक ने कहा, "अब क्या करोगी।" उसने कहा, "अब मैं अपने वार्ड की सभी कन्याओं से कहूंगी कि स्कूल पढ़ने जाओ, नहीं तो तुम भी मेरी तरह अनपढ़ रह जाओगी।" अर्थात अब महिलाओं को लड़कियों को पढ़ाने से प्राप्त होने वाले अवसर नजर आ रहे हैं। इसलिए 500 या 1,000 रुपये देने से सौ दर्जे अच्छा है कि पंचायतों को उनका संवैधानिक अधिकार देकर सशक्त किया जाए ताकि लोगों की भागीदारी बढ़े तथा लड़कियों के अभिभावक उन्हें पढ़ाना आवश्यक समझें।

औरों की बात तो छोड़िए, केन्द्र सरकार के परिवार कल्याण मंत्रालय ने इस स्कीम पर ऐतराज जाहिर किया है क्योंकि यह स्कीम जनसंख्या वृद्धि को रोकने के बजाय उसे बढ़ावा देगी। वह ऐसे कि इस योजना के तहत 'तथाकथित' लाभ दो बालिकाओं तक प्राप्त होगा जबकि मंत्रालय का उद्देश्य परिवारों को दो बच्चों तक ही सीमित करना है, चाहे वे दो बच्चे बालक हो या बालिका। अब क्या होगा। उदाहरण के लिए यदि किसी गरीब परिवार में दो बच्चे—एक लड़का एक लड़की है, उस परिवार को चाह रहेगी कि अगर एक लड़की और पैदा हो जाती है तो उसे पैसा मिलेगा। संयोगवश फिर लड़का पैदा हो जाता है तो उसकी लड़की पैदा करने की लालसा बनी रहेगी।

एक तरफ नीति है जनसंख्या कम करने की तो दूसरी तरफ ऐसी नीति लागू की जा रही है कि जनसंख्या बढ़े। अंतत: बालिका समृद्धि जैसी अव्यावहारिक योजना लागू करने पर फिर से विचार किया जाना चाहिए। ❑

1. हम दिल्ली से **योजना अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू, पंजाबी और उड़िया में**

कुरुक्षेत्र हिन्दी और अंग्रेजी में

आजकल हिन्दी और उर्दू में

और बाल भारती हिन्दी में प्रकाशित करते हैं।

2. हर पत्रिका का शुल्क है : एक वर्ष के लिए 50 रुपये

दो वर्ष के लिए 95 रुपये

तीन वर्ष के लिए 135 रुपये

3. डिमांड ड्राफ्ट/पोस्टल आर्डर निदेशक प्रकाशन विभाग को नई दिल्ली में देय होना चाहिए।

4. कूपन व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110001 के पते पर भेजिए।

5. शुल्क प्राप्त होने के बाद नियमित रूप से पत्रिका के अंक मिलने शुरू होने में आठ से दस सप्ताह का समय लगता है।

घट रहा है पानी

प्रमोद भार्गव

हमारे देश में बीते पचास सालों के भीतर जिस तेजी से कृत्रिम, भौतिक और उपभोक्तावादी संस्कृति को बढ़ावा देने वाली वस्तुओं का उत्पादन बढ़ा है, उतनी ही तेजी से प्राकृतिक संसाधनों का या तो क्षरण हुआ है या उनकी उपलब्धता घटी है। ऐसे प्राकृतिक संसाधनों में से एक है 'पानी'। 'जल ही जीवन है' की वास्तविकता से अवगत होने के बावजूद पानी की उपलब्धता भूमि के नीचे और ऊपर निरंतर कम होती जा रही है। आजादी के दौरान प्रति व्यक्ति सालाना दर के हिसाब से पानी की उपलब्धता छह हजार घन मीटर थी, जो अब घट कर करीब दो हजार घन मीटर रह गई है। जिस तेजी से पानी के इस्तेमाल के लिए दबाव बढ़ रहा है और जिस बेरहमी से भूमि के नीचे के जल का दोहन नलकूपों से किया जा रहा है, उससे यह तय हो जाता है कि अगले 20 साल बाद जल की उपलब्धता घट कर बामुश्किल सोलह सौ घन मीटर रह जाएगी।

टाटा एनर्जी रिसर्च इंस्टीट्यूट (टेरी) के अनुसंधानपरक अध्ययनों से साबित हुआ है कि भूमिगत जल के आवश्यकता से अधिक प्रयोग से भावी पीढ़ियों को कालांतर में जबरदस्त जल संकट का सामना करना होगा। नलकूपों के उत्खनन संबंधी जिन आंकड़ों को हमने 'क्रांति' की संज्ञा दी, दरअसल यह संज्ञा तबाही की पूर्व सूचना है जिसे हम नजरअंदाज करते चले आ रहे हैं। देश में खाद्यान्न सुलभता के आंकड़ों को पिछले पचास सालों की एक बड़ी उपलब्धि बताया जा रहा है, लेकिन इस खाद्यान्न उत्पादन के लिए हरित क्रांति प्रौद्योगिकी का उपयोग किया गया है। इससे नलकूपों की संख्या कुकुरमुत्तों की तरह बढ़ी है, लेकिन उतनी ही तेजी से भूमिगत जल की उपलब्धता घटी है।

अध्ययन के अनुसार 1947 में लगभग एक हजार नलकूप पूरे देश में थे, जिनकी संख्या अब साठ लाख से ऊपर है। सस्ती अथवा निःशुल्क बिजली देने से नलकूपों की संख्या में और बढ़ोतरी हुई है। पंजाब और मध्य प्रदेश की सरकारों ने किसानों को मुफ्त बिजली देकर नलकूप खनन को बेवजह प्रोत्साहित किया है। इस उत्खनन के चलते पंजाब के 12, हरियाणा और मध्य प्रदेश के तीन-तीन, जिलों से पानी बहुत ज्यादा निकाला जा रहा है, जबकि वर्षा जल से उसकी भरपाई नहीं हो पा रही है। गुजरात के मेहसाणा और तमिलनाडु के कोयंबतूर जिलों में तो भूमिगत जल पूर्णतया खत्म हो गया है। हरियाणा के कुरुक्षेत्र और महेंद्रगढ़, मध्य प्रदेश के खंडवा, खरगोन और भिंड जिलों में प्रतिवर्ष जल की सतह आधा मीटर नीचे खिसक रही है। इस जल को ऊपर खींचने में ज्यादा बिजली खर्च हो रही है। जिन जल क्षेत्रों में पानी का अत्यधिक दोहन हो चुका है, वहां पानी खींचने के खर्च में 490 करोड़ रुपये का इजाफा हुआ है।

अकेले मध्य प्रदेश में प्रतिवर्ष खोदे जा रहे कुंओं और नलकूपों पर विचार करें, तो आंकड़े देखने पर पता चलता है कि कुंओं और नलकूपों के जरिये धरती से जल दोहन के सिलसिले से मानो क्रांति आई है। ये खनन सरकारी और गैर-सरकारी दोनों मोर्चों पर, युद्ध स्तर पर हो रहे हैं। प्रदेश के 45 जिलों में प्रतिवर्ष लगभग 2 लाख 80 हजार कुंएं और 25 हजार नलकूपों का खनन किया जाता है। एक अनुमान के मुताबिक इस खनन में प्रदेश के सहकारी बैंकों का करीब एक हजार करोड़ और राष्ट्रीयकृत बैंकों का करीब नौ सौ करोड़ रुपया लगा हुआ है। इस धनराशि में वह राशि शामिल नहीं है जो 1990-93 के दौरान प्रदेश में ऋण मुक्ति अभियान के अंतर्गत माफ कर दी गई थी। इसके अलावा निजी स्तर पर करोड़ों रुपये नलकूप खनन में लगाए जा रहे हैं। बिखरे हुए उद्योगों के रूप में मौजूद यह खनन क्रांति बतौर एक जजबाती जुनून की तरह फिलहाल परवान चढ़ती जा रही है। इस क्रांति के परिणाम समष्टिगत लाभ की दृष्टि से उतने लाभकारी नहीं रहे, जिस अनुपात में इस खनन क्रांति से जल स्तर घटा है और जल प्रदूषण की संभावनाएं बढ़ी हैं।

नलकूपों के बड़ी मात्रा में खनन से कुंओं के जल स्तर पर जबरदस्त प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। कुंओं की हालत यह है कि 75 प्रतिशत कुंएं हर साल दिसंबर माह में, 10 प्रतिशत जनवरी में और 10 प्रतिशत अप्रैल माह में सूख जाते हैं। पूरे प्रदेश में केवल दो प्रतिशत कुंएं ही ऐसे हैं, जिनमें बरसात के पहले तक पानी रहता है। ग्राम सिंहनिवास (शिवपुरी) के कृषक बुद्धाराम कहते हैं, "इस इलाके में जब से ट्यूबवैल बड़ी मात्रा में लगे हैं, तब से कुंओं का पानी जल्दी सूखने लगा है।" शिवपुरी जिला पंचायत के अध्यक्ष रामसिंह यादव का कहना है, "एक ट्यूबवैल पांच से 10 कुंओं तक का पानी सोख लेता है।" जल विशेषज्ञ और पर्यावरणविद् भी अब मानने लगे हैं कि जल स्तर को नष्ट करने और जलधाराओं की गति अवरुद्ध करने में नलकूपों की मुख्य भूमिका रही है। नलकूपों के खनन से पहले तक कुंओं में लबालब पानी रहता था, लेकिन अनेक सफल नलकूप तैयार होने के बाद कुंएं समय से पहले सूखने लगे। भूमि संरक्षण विभाग के अधिकारियों का इस सिलसिले में कहना है कि भूमि में 210 से लेकर 330 फीट तक छेद (बोर) करने से धरती की परतों में बह रही जलधाराएं नीचे चली गईं। इससे जल स्तर भी नीचे चला गया और ज्यादातर कुंएं समय से पूर्व सूखने लगे।

नलकूपों का खनन करने वाली रिग्ग और गेज मशीनों के चलने से धरती की परतों का बहुत बड़ा क्षेत्र प्रकंपित होता है। इससे जलधाराओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। जलधाराओं की पूरी संरचना अस्त-व्यस्त होकर बिखर गई है, जो जल स्तर स्थिर बनाए रखने में सहायक रहती थी। अब हालात इतने बदतर हो गए हैं कि जल स्तर तीन सौ से आठ सौ फीट की गहराई तक चला गया है। इस कारण पेयजल तथा सिंचाई का संकट विकराल होता चला जा रहा है। दूसरी तरफ नलकूप खनन से, जीविका

और धन अर्जन करने वाले अब ऐसी ताकतवर मशीनों से खनन कर रहे हैं जिनकी खनन क्षमता एक हजार फीट तक है और ये आठ इंच तक का चौड़ा छेद करती हैं। लिहाजा यह निश्चित है कि ये मशीनें न केवल जल स्तर की समस्या बढ़ाएंगी बल्कि जल प्रदूषण की समस्या भी खड़ी करेंगी, क्योंकि अधिक गहराई से निकाले गए जल में अनेक प्रकार के खनिज तथा लवण घुले होते हैं और जल की सतह पर जहरीली गैसें छा जाती हैं जो अनेक रोगों को जन्म देती हैं। ये गैसें गहरे कुंओं के लिए और अधिक घातक हैं।

भिंड जिले के कुंओं में हर साल जहरीली गैसों का रिसाव होता है। पिछले छह-सात सालों में यहां करीब दो दर्जन लोग जहरीली गैसों की गिरफ्त में आकर प्राण गंवा चुके हैं। भिंड जिले के गांवों के कुंएं 75 से 125 फीट तक गहरे हैं। पानी खींचने के लिए पम्पों की मोटरें लगी हुई हैं। मोटर खराब होने पर स्वयं किसान को खराबी देखने के लिए कुंओं में उतरना होता है और अनजाने में ही किसान जल की सतह तक निकलकर फैली गैस की चपेट में आकर होश गंवा बैठता है और जान दे देता है।

कृषि वैज्ञानिकों और अधिकारियों का इस सिलसिले में कहना है कि कुंओं में जहरीली गैसों से मौतें इसलिए होती हैं क्योंकि गहरे कुंओं में कार्बन डाइ-आक्साइड, कार्बन मोनोक्साइड और मीथेन गैसें होती हैं जिससे आक्सीजन की कमी गहरे कुंओं में हो जाती है। कुओं में आक्सीजन की कमी की पुष्टि इस तथ्य से होती है कि कुंओं के भीतर जो भी मौतें हुईं, उनके मुंह खुले और त्वचा का रंग नीला पाया गया। कुंओं की सतह पर हवा न पहुंच पाने के कारण जहरीली गैसें बनती हैं। कृषि वैज्ञानिक जहरीली गैसें निकलने का प्रमुख कारण जल स्तर लगातार गिरते जाना मानते हैं और यह भी चेतावनी देते हैं कि जल स्तर इसी तरह नीचे गिरता रहा और कुंओं का गहरीकरण होता गया, तो जहरीली गैसों का और ज्यादा रिसाव हो सकता है। कृषि वैज्ञानिक कुंओं में जहरीली गैस का पता लगाने के लिए उपाय सुझाते हैं कि जब भी गहरे कुंओं में उतरना हो तो पहले कुंएं में जलती हुई लालटेन रस्सी में बांध कर पानी की सतह पर उतारें। यदि लालटेन बुझ जाती है, तो समझिए कुंएं में जहरीली गैसें हैं।

कठोर चट्टानों की जटिल संरचना वाले मध्य प्रदेश में भूजल संवर्द्धन की अवधारणा इसकी विविधता के कारण विशिष्ट पहचान रखती है। उत्तर भारत में हिमालय से निकलने वाली नदियों के तंत्र के विपरीत प्रदेश की सभी छोटी-बड़ी नदियां भूजल से जलमग्न एवं प्रवाहित रहती हैं। प्रदेश का ज्यादातर पश्चिमी हिस्सा लावा निर्मित बेसाल्ट चट्टानों से निर्मित है, जिसका सकल क्षेत्रफल 1.43 लाख वर्ग किलोमीटर है जो प्रदेश के क्षेत्रफल का करीब एक-तिहाई है। भूजल की उपलब्धि, भू-स्तर के नीचे पाए जाने वाले जलभंडारों के गुणों की असमानता पर निर्भर होती है। भूजल उपलब्धि की समस्या झाबुआ जैसे जिलों में, जहां वर्षा का औसत 80 सेंटीमीटर से कम है, वर्षा की कमी के कारण और जटिल हो जाती है। वर्षा ऋतु में बहने वाले पानी के उपयुक्त संरक्षण द्वारा भू-स्तर के नीचे जो जल-भंडार खाली हो गए हैं, उनकी जल आपूर्ति की जा सकती है। स्थानीय परिस्थितियों में स्थान-भेद के कारण होने वाले अंतर के बावजूद मोटे तौर पर बेसाल्टी चट्टानों में 90 फीट गहराई तक उपलब्ध जल भंडारों का जल पीने योग्य है, परंतु गहरे नलकूप जिनका छिद्रण पांच सौ फीट के करीब है, ऐसे नलकूपों में खारे पानी की मात्रा ज्यादा है। इस कारण पानी की शुद्धता के लिए भू-स्तर के नीचे उपलब्ध खाली जल भंडारों को वर्षा जल से भरकर पुनर्जीवित करना जरूरी है।

धरती पर जल संग्रह

कुल मात्रा	:	146 करोड़ घन किलो मीटर
समुद्रों में उपलब्ध जल	:	37.3 प्रतिशत
पृथ्वी पर पेयजल	:	2.3 प्रतिशत

पृथ्वी पर उपलब्ध पेयजल का विभाजन

उत्तरी व दक्षिणी ध्रुव पर बर्फ के रूप में	:	76.742 प्रतिशत
800 से 4,000 मीटर गहराई में भूमिगत जल	:	12.790 प्रतिशत
सतह से 800 मीटर तक	:	9.899 प्रतिशत
प्राकृतिक झीलों में	:	0.339 प्रतिशत
कृत्रिम झीलों में	:	0.188 प्रतिशत
मिट्टी में नमी के रूप में	:	0.188 प्रतिशत
वायु में आद्रता के रूप में	:	0.038 प्रतिशत
नदियों में जल के रूप में	:	0.004 प्रतिशत

भूमिगत जल कम होते जाने की हानि से न केवल उसका दोहन खर्चीला होता जा रहा है, बल्कि जल की बड़ी मात्रा संदूषित भी होती जा रही है। चूंकि भूमिगत जल की कोई कीमत प्रकृति से वसूल नहीं की जा रही है और इसके बेहिसाब उपयोग पर सरकार की ओर से कोई प्रतिबंध नहीं है, इसलिए भावी पीढ़ियों का जल वर्तमान पीढ़ी बेरहमी से लगातार खर्च करती चली जा रही है। हमारे देश की जब थोथी लोकप्रियता बटोरने वाली राजनीति इतनी प्रभावी हो कि किसानों को तीन रुपये प्रति यूनिट लागत की बिजली दी जा रही है तो जल प्रयोग पर शुल्क निर्धारित करने की हिम्मत कौन जुटाएगा। यदि धरती के नीचे उपलब्ध सहज सुलभ पानी को जरूरत के अनुसार प्रयोग करने पर ध्यान दिया जाए, तो पचास फीसदी जल की बरबादी पर रोक लगाई जा सकती है।

अंधाधुंध नलकूपों के गहरीकरण पर तत्काल नियंत्रण लगाकर इसके वैकल्पिक उपाय नहीं तलाशे गए, तो इक्कीसवीं सदी के पहले दशक में सबसे जबरदस्त संकट—जल की कमी और जल प्रदूषण का होगा। इस समस्या के निराकरण के सार्थक उपाय बड़ी मात्रा में पारंपरिक जलग्रहण के भंडार तैयार करना है। पारंपरिक मानते हुए जलग्रहण की इन तकनीकों की हमने पिछले पचास सालों में घोर उपेक्षा की है, नतीजतन आज हम जल समस्या से जूझ रहे हैं, जबकि इन्हीं तकनीकों के जरिये, स्थानीय

(शेष पृष्ठ 28 पर)

आर्थिक समृद्धि के लिए मोती पालन

डा. सीताराम सिंह पंकज*

सच पूछिए तो मोती नौ रत्नों में से एक ऐसा जैविक रत्न है जो अपने प्राकृतिक रूप में ही अन्य रत्नों से अधिक सुंदर दिखता है। मोती और मूंगा अन्य रत्नों से भिन्न होते हैं क्योंकि ये खनिज पदार्थ न होकर जैविक पदार्थ होते हैं। अन्य रत्नों की तरह मोती को सुंदर बनाने के लिए काटने-छांटने, तराशने या पालिश करने की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि यह प्राकृतिक रूप से ही खूबसूरत, चमकदार और आकर्षक होता है।

बिना रीढ़ वाले प्राणियों (इनवर्टिब्रेट्स) का एक संघ (फाइलम) है— मोलस्का। इस संघ के प्राणियों का शरीर अत्यंत मुलायम होता है जो एक सुरक्षात्मक आवरण यानी कवच से ढका रहता है। मोती श्वेत, अत्यंत चमकदार, गोलाकार संग्रथन (Concretion) है जो एक शुक्ति (Oyster) के कवच के अंदर पाया जाता है। गरज यह कि शुक्ति एक प्रकार का कवच प्राणी है। मोती का निर्माण करने वाले मोलस्क को 'पर्ल ओएस्टर' कहते हैं।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

प्रागैतिहासिक काल से ही मोती एक दुर्लभ रत्न के रूप में विख्यात रहा है। जाहिर है प्राचीन काल में मोती को चांद के टपके आंसू माना जाता था। संस्कृत साहित्य में ऐसा वर्णन मिलता है कि 'स्वाति नक्षत्र' में जब पानी की बूंद प्रवार (Mantle) तथा मुक्ताभ स्तर के बीच गिरती है तो वही मोती के रूप में विकसित हो जाती है। वस्तुत: यह वर्णन तथ्यपरक और तर्कपूर्ण है। प्रकृति में मोती की दुर्लभ उपस्थिति का कारण उसके निर्माण की विशिष्ट रीति ही है। कहते हैं चीनवासियों को 2300 ई. पू. से ही मोती का ज्ञान था। गोस्वामी तुलसी दास से लेकर कौटिल्य तथा शेक्सपीयर ने भी अपने कालजयी साहित्य में मोती का वर्णन किया है। ज्ञात हो कि मोती पालन संगठनों में व्यस्त शोधकर्ताओं ने इस प्राकृतिक परिघटना को प्रयोगशाला में अनुकरित कर प्राकृतिक मोती जैसे पदार्थों से बने कृत्रिम मोती के उत्पादन में सफलता प्राप्त की है।

उद्योग का इतिहास

सर्वप्रथम मोती उत्पादन का श्रेय जापानियों को है जिन्होंने जापान की खाड़ी में इसे क्रियान्वित किया। किंतु प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण आरंभ में उन्हें सफलता नहीं मिली। कोकीची मिकिमाटो को जापान के मोती उद्योग का जन्मदाता माना जाता है। कहते हैं, टोकियो में 1890 में घरेलू उद्योग की एक वार्षिक प्रदर्शनी में अन्य औद्योगिक उत्पादों के साथ मोती भी ऊंचे मूल्य पर बेचे गए थे। मिकिमाटो ने 1890 में टार्ब नामक एक छोटे-से द्वीप पर मोती फार्म खोला तथा मुक्ता शुक्ति (पर्ल ओएस्टर) पालन का कार्य प्रारंभ किया। प्रारंभिक असफलताओं के पश्चात उन्हें आश्चर्यजनक सफलता मिली। कालांतर में उन्होंने मोती पालन का विशिष्ट अधिकार (पेटेन्ट) प्राप्त कर लिया।

मोती उत्पादक मोलस्क

यद्यपि बहुत-से बाइवाल्वस में उपयुक्त जलवायु और अनुकूल परिस्थितियों में मोती उत्पन्न करने की क्षमता होती है, किंतु उच्च कोटि के मोती 'पिंकटाडा रोडिंग' द्वारा प्राप्त होते हैं। ये 'मोलस्का' संघ के 'बाइवाल्विया' वर्ग तथा 'टेरीडी' कुल के सदस्य हैं। इस वंश की अनेक जातियां मसलन—पि. वलगेरिस, पि. कैमनिजी फिलीपी, पि. मारगेरीटीफेरा लिन., पि. एट्रोपरपुरिया डंकर आदि भारतीय जलाशयों में पाई जाती हैं। पि. वल्गेरिस कच्छ की खाड़ी, मन्नार की खाड़ी तथा पाकिस्तानी जलडमरू-मध्य में मिलने वाली सामान्य प्रजाति है।

वंश पिंकटाडा के सच्चे मुक्ता ओएस्टर के अतिरिक्त बहुत-से समुद्री तथा स्वच्छ जल में पाए जाने वाले मोलस्क भी मोती या मोती जैसे संग्रथन बना सकते हैं। पि. मारगैरीटीफेरा तथा पि. मैक्सिमा दैत्याकार जातियां हैं जो बड़े परंतु निम्न श्रेणी के मोती उत्पन्न करती हैं।

मोती का निर्माण

वस्तुत: मोती का निर्माण एक रोचक प्रक्रिया है जो बाहरी आक्रामकों, परजीवियों, रेत के कण, समुद्री-खरपतवार के छोटे-छोटे टुकड़ों या टहनियों या छोटे कीटों के शरीर का सुरक्षा उपाय है। इनमें से कोई भी वस्तु ओएस्टर के शरीर में प्रवेश करके इसके मेंटल में चिपक जाती है। प्रवार की उपकला (एपिथिलियम) इस बाहरी पदार्थ के चारों ओर थैलीनुमा संरचना बना लेती है तथा सुरक्षा के लिए इसके चारों ओर मुक्ताभ का स्राव करने लगती है जो धीरे-धीरे इस बाहरी पदार्थ को पूर्णत: घेर लेता है। मेंटल के उपकला स्तर से मुक्ताभ का निरंतर स्राव होता रहता है जो

*अध्यक्ष, प्राणी विज्ञान विभाग, के.एस.आर. कालेज, सरायरंजन, समस्तीपुर

बाह्य कण के चारों ओर कई परतों के रूप में जमा हो जाता है और अंतत: मोती बन जाता है। रासायनिक दृष्टि से ये परतें कैल्शियम कार्बोनेट और कांचीओलिन की होती हैं। कुल मिलाकर मोती जल, कार्बनिक पदार्थों, कैल्शियम कार्बोनेट तथा अवशेष पदार्थों का बना होता है। इसमें जल 2.4 प्रतिशत, कार्बनिक पदार्थ 3.5—5.9 प्रतिशत, कैल्शियम कार्बोनेट 90 प्रतिशत तथा अवशेष 0.1 प्रतिशत होता है।

मोती उद्योग कार्यक्रम

यद्यपि प्राकृतिक ढंग से ओएस्टर से मोती बनाने की प्रक्रिया के आधार पर ही मोती उद्योग की स्थापना की जा सकती है किंतु अधिक संख्या में मोती उत्पन्न करने के लिए केन्द्रक के कृत्रिम निवेशन (Insertion) की तकनीक काफी उपयोगी है। वस्तुत: यह सारी प्रक्रिया अत्यंत जटिल, तकनीकी (Technical) तथा समय लेने वाली है। इसका प्रबंधन इस प्रकार किया जा सकता है :

शुक्ति संग्रह (Collecttion of Oyster) : जापान में शुक्ति, समुद्र की तलहटी से गोताखोरों, विशेषतया महिला गोताखोरों द्वारा निकाले जाते हैं जिन्हें आमा कहते हैं। जापानी भाषा में इसका अर्थ होता है 'सागर की कन्याएं'। साधारणतया इन गोताखोरों को बचपन से ही गोता लगाने और समुद्री कवच या समुद्री शैवाल खोजने का प्रशिक्षण दिया जाता है। गोताखोरी के समय पूर्णत: सुरक्षित सूती सूटों का प्रयोग किया जाता है। जब गोताखोर लगभग 5-6 मीटर की गहराई तक गोता लगाता है, तब उसके हाथ में एक छोटा हाथ जाल (Hand net) दे दिया जाता है। जाल द्वारा तल से पर्ल ओएस्टर का संग्रह किया जाता है। एक अनुभवी गोताखोर पानी में डेढ़ मिनट तक रह सकता है तथा एक बार के गोते में 2-10 तक ओएस्टर एकत्र कर सकता है। गोताखोरी के लिए उचित समय प्रात:काल से मध्याह्न तक होता है।

ओएस्टर एकत्र करने का उपयुक्त समय ग्रीष्म ऋतु होता है, जब पानी स्वच्छ तथा समुद्र शांत रहता है। गहरे समुद्री जल में गोता लगाते समय गोताखोर सीधे नौका के पार्श्व से संचालित होता है। गोताखोर की कलाई से एक रस्सी बंधी रहती है जिसके द्वारा नौका संचालित करने वाला व्यक्ति, गोताखोर के एक निश्चित इशारे पर तुरंत बाहर खींच सकता है। इस प्रकार जमा किए गए ओएस्टरों में से समान आयु वर्ग के ओएस्टरों को अलग करके, दो वर्ष तक पुराने ओएस्टरों को छिछले जल में डाल दिया जाता है। मोती उद्योग के लिए ओएस्टरों की सतत आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए इनके अंडों का कृत्रिम रूप से उष्मायन (Incubation) किया जाता है। इस प्रकार मोती पालन के लिए ओएस्टर प्राप्ति की समस्या का समाधान हो जाता है।

शुक्तियों का पालन-पोषण : एकत्रित किए गए सभी ओएस्टरों को विशेष प्रकार के पिंजरों में, जिन्हें पोषण पिंजरे (Rearing Cages) कहते हैं, एकत्र किया जाता है। ये पिंजरे 4-6 छोटे-छोटे खानों (Chambers) में विभाजित रहते हैं। इनके ऊपर धातु की जाली तथा सूती जाली का आवरण होता है ताकि ये ओएस्टरों के प्राकृतिक शत्रुओं से पूर्णत: सुरक्षित रहें। इनके प्राकृतिक शत्रु हैं—आक्सटोपस, ईल, डेविलफिश इत्यादि। एकत्र किए गए सभी ओएस्टरों को सर्वप्रथम संवर्द्धन पिंजरों में 10 से 20 दिनों के लिए रख दिया जाता है। इस प्रकार ये स्पर्श से उत्पन्न तनावों से मुक्त होकर सामान्य जीवन व्यतीत करने लगते हैं।

केन्द्रक का निवेशन : केन्द्रक का एक बाहरी कण के रूप में निवेशन एक गूढ़ तकनीकी प्रक्रिया है तथा मोती उद्योग (पर्ल कल्चर) में इसका बहुत महत्व है। इस कार्य के लिए सर्वाधिक व्यावहारिक विधि है—निशिकोवम विधि। इस विधि में एक जीवित ओएस्टर के मेंटल का टुकड़ा काटकर एक उपयुक्त केन्द्रक के साथ, एक दूसरे ओएस्टर के जीवित उत्तक के अंदर निवेशित कर दिया जाता है। केन्द्रक के निवेशन के लिए चुने हुए ओएस्टर का स्वस्थ और इतना शक्तिशाली होना आवश्यक है कि वे शल्यक्रिया के प्रभाव को सहन कर सके।

यद्यपि कोई भी बाहरी कण मोती के निर्माण की प्रक्रिया को आरंभ कर सकता है किंतु कैल्शियम केन्द्रक इसके लिए सर्वोत्तम माना गया है। उत्तम कोटि के गोल मोती के निर्माण के लिए गोलाकार केन्द्रक सर्वोत्तम होता है। पर्ल ओएस्टर की शल्यक्रिया तथा निवेशन दोनों ही प्रशिक्षित एवं अनुभवी व्यक्ति द्वारा किया जाना चाहिए।

भारत में मोती का उत्पादन

विश्व में सबसे सुंदर मोती फारस की खाड़ी तथा मन्नार की खाड़ी का माना जाता है। इसे 'ओरिएंट' के नाम से जाना जाता है। दूसरे 'आक्सीडेंट' नाम के मोती यूरोपीय नदियों में पाए जाते हैं। पर्ल ओएस्टर मन्नार की खाड़ी के साथ साथ कच्छ की खाड़ी, पाक की खाड़ी तथा बड़ौदा की शैल भित्तियों में पाए जाते हैं। जापान और चीन के बाद अब भारत में भी वैज्ञानिक अनुसंधानों के फलस्वरूप मोती का उत्पादन आरंभ हो गया है। भारत में मोती उत्पादन की जो तकनीक अपनाई जा रही है, वह मन्नार की खाड़ी की है। इसका आरंभ 1961 में हुआ था। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आई.सी.ए.आर.) तथा केन्द्रीय समुद्री मछली अनुसंधान संस्थान (सी.आई.एफ.आर.) इस दिशा में नई तकनीकें विकसित कर रहे हैं। मोती उत्पादन आजकल एक लाभकारी व्यवसाय बन गया है, किंतु इसके लिए पर्याप्त प्रशिक्षण, लगन और परिश्रम की आवश्यकता पड़ती है।

मोतियों का शहर : हैदराबाद

दक्षिण भारत का प्रमुख शहर हैदराबाद, आज संपूर्ण विश्व में मोतियों के व्यापार हेतु मशहूर है। मोतियों के आयात का काम यहां सदियों से जारी है क्योंकि खूबसूरत और उम्दा किस्म के मोतियों का उत्पादन यहां बहुत अल्प मात्रा में होता है। किंतु विदेशों से आयातित कच्चे मोतियों की सफाई-गढ़ाई तथा तराशने के साथ ही उन्हें आभूषणों एवं मालाओं में पिरोने का सबसे बड़ा केन्द्र यही शहर है। कच्चे मोतियों से विविध आभूषण बनाने की कला में सिद्धहस्त हैं, यहां के कारीगर। शायद यही कारण है कि आज हैदराबाद विश्व में मोतियों के आभूषणों के व्यापार का सबसे बड़ा केन्द्र माना जाता है। इसे मोतियों का शहर भी कहते हैं। जितने बड़े पैमाने पर यहां से मोतियों का निर्यात कर विदेशी मुद्रा अर्जित की जाती है, वह काबिले तारीफ है।

प्राकृतिक मोती सर्वाधिक महंगे होते हैं। कृत्रिम रूप से तैयार किया गया मोती 'कल्चर्ड पर्ल' कहलाता है। ये भी कम महंगे नहीं होते। मोतियों की तीसरी किस्म है—'सेमी कल्चर्ड' जो प्लास्टिक तथा सीपी के बुरादे से तैयार की जाती है। इनकी कीमत बहुत कम होती है। ये आधुनिक मोती कहलाते हैं। इनका आकार गोल होता है जबकि प्राकृतिक एवं कल्चर्ड मोती किसी भी स्थिति में पूर्णतया गोलाकार नहीं होता।

मोतियों में छेद करने से लेकर उनकी पालिश तथा सफाई का कार्य बहुत चौकसी के साथ करना पड़ता है। इसके लिए पूर्ण प्रशिक्षित कारीगरों की आवश्यकता होती है। हैदराबाद के चारमीनार क्षेत्र तथा मेंढक जिले के चन्दमपेट गांव में मोतियों की सफाई और पालिश का कार्य बड़े पैमाने पर किया जाता है। किंतु मोतियों से जुड़े कारीगरों का जीवन बहुत खुशहाल नहीं है। मुश्किल से ये कारीगर अपनी रोटी का जुगाड़ कर पाते हैं। इसलिए जरूरी है कि राज्य सरकार से इस व्यवसाय में लगे कारीगरों को समुचित आर्थिक सहायता मिले।

हैदराबाद में मोतियों के व्यापार के फलने-फूलने का कारण यहां के राजघरानों द्वारा इसे प्रश्रय दिया जाना है। स्वतंत्रता पूर्व तत्कालीन राजाओं ने अपने राज्य की आर्थिक स्थिति मजबूत करने और शहर को खुशहाल बनाने के लिए व्यापारियों को प्रोत्साहित किया था। उन्हीं दिनों सन् 1908 में श्री केदारनाथ मोतीवाला ने मोतियों का व्यवसाय आरंभ किया जो तीन पीढ़ियों से निरंतर फल-फूल रहा है। स्वतंत्रता पश्चात मोती उत्पादन को विकसित करने की दिशा में भारत सरकार निरंतर प्रयत्नशील रही है। बहरहाल इस उद्योग को और अधिक विकसित करने की आवश्यकता है। इसके लिए पर्याप्त प्रशिक्षण, उचित माहौल और आर्थिक सहायता की जरूरत है। मोती उत्पादन को व्यवसाय का रूप प्रदान कर बेशुमार बेरोजगारों को रोजी-रोटी का साधन उपलब्ध कराया जा सकता है। निस्संदेह यह व्यवसाय देश को समृद्ध और सागर तट पर बसे लोगों को सम्पन्न बना सकता है। मोती उत्पादन और मोती से जुड़ा व्यवसाय बहुमूल्य विदेशी मुद्रा अर्जित करने का भी श्रेष्ठ साधन है।

मोती उद्योग हेतु सुझाव

- मोती-ओएस्टरों को पकड़ने के लिए प्रयोग में लाए जाने वाले जालों का आकार ऐसा होना चाहिए जिसमें से एक निश्चित आकार के छोटे ओएस्टर न पकड़े जा सकें तथा उन्हें वृद्धि का पूर्ण अवसर मिल सके।
- मोती-ओएस्टरों को इतना अधिक नहीं पकड़ा जाना चाहिए जिनसे उनका भंडार शीघ्र समाप्त हो जाए।
- प्रजनन ऋतु (ब्रीडिंग सीजन) में मोती ओएस्टरों को नहीं पकड़ना चाहिए। इससे उनके प्रजनन में बाधा पैदा हो सकती है। अत: उन्हें निर्बाध रूप में प्रजनन करते रहने देना चाहिए। ओएस्टरों के प्रजनन काल को 'निषिध काल' घोषित कर देना चाहिए। ❑

पृष्ठ 17 का शेष **(ग्रामीण क्षेत्रों में दुग्ध सहकारी समितियों का सामाजिक प्रभाव)**

धीरे-धीरे समाप्त हो रही है। दुग्ध विकास परियोजना नीति के तहत उन्नत पशु नस्ल, कृत्रिम गर्भाधान, पौष्टिक पशु आहार, हरे चारे का उपयोग आदि के प्रति उनकी रुचि बढ़ती जा रही है। इस तरह पशु पालन की रूढ़िवादी विचारधारा का स्थान आधुनिक विचारधारा ले रही है।

शिक्षा का प्रसार

ग्रामीण क्षेत्रों में पाठशाला के अलावा ऐसा कोई औपचारिक संगठन नहीं है जो काश्तकारों को शिक्षा प्रदान कर सके। किंतु दुग्ध सहकारी समितियों द्वारा पशुओं के रख-रखाव, उनकी चिकित्सा, बीमा, संतुलित पशु आहार, दूध में वसा की मात्रा आदि के संबंध में ग्रामीणों को जानकारी प्रदान की जाती है। चलचित्र, प्रदर्शनी तथा कृषकों के भ्रमण कार्यक्रमों से ग्रामीणों को यह जानकारी दी जाती है कि किस प्रकार के प्रयास करने पर कम समय में प्रगति की जा सकती है। संकलन केन्द्रों पर समिति के सदस्य एक-दूसरे से मिलते हैं और आपस में विचार-विमर्श करते हैं। अगर किसी दिन किसी सदस्य के यहां से संकलन केन्द्र में कम दुग्ध आता है तो अन्य सदस्यों से इस कमी के संदर्भ में वार्तालाप होता है और वे अपने स्तर पर समस्या का समाधान करने का प्रयास करते हैं। दुग्ध संघ के अधिकारी भी समय-समय पर उन्हें जानकारी देते हैं। इन सभी प्रयत्नों से ग्रामीण व्यक्तियों को गैर-संस्थागत शिक्षा मिलती है जिससे उनके ज्ञान में वृद्धि होती है और उनका शोषण भी नहीं किया जा सकता।

प्रबंध तथा संगठन की क्षमता का विकास

दुग्ध सहकारी समितियों का प्रबंध ग्रामीण दुग्ध उत्पादकों में से ही उनके द्वारा चुने हुए सदस्य पदाधिकारियों द्वारा किया जाता है और दुग्ध संघ के संचालक मंडल में भी इन्हीं में से संचालक चुनकर जाते हैं। पदाधिकारियों का चुनाव प्रत्येक तीसरे वर्ष होता है, जिससे नये सदस्यों को सहकारी समितियों का प्रबंध और संगठन में कार्य करने का अवसर मिलता है। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में प्रबंध और संगठन की क्षमता का विकास होने लगा है। दुग्ध सहकारी समिति की स्थिति में सुधार करने, उसे आगे बढ़ाने के संबंध में सभी पदाधिकारी तथा सदस्य अनेक उपयोगी सुझाव देते हैं।

इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों में अंधविश्वास एवं परंपरावादी दृष्टिकोण के स्थान पर अब आधुनिक विचारधारा के बढ़ते प्रचलन को आसानी से देखा जा सकता है। प्रतिदिन मिलने से सदस्यों के बीच आपसी सहयोग की भावना बढ़ रही है। समाज में फैली विभिन्न कुरीतियों को समाप्त करने में समितियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इस प्रकार दुग्ध सहकारी विपणन के अंतर्गत दुग्ध समितियों के कारण समाज में परिवर्तन आ रहा है, यद्यपि इन परिवर्तनों को लाने में अन्य बातों का भी योगदान रहा है, फिर भी दुग्ध समितियों के सहयोग को कम नहीं आंका जा सकता है। ❑

सूचना और प्रसारण मंत्रालय के प्रकाशन विभाग की बालोपयोगी पुस्तकें

● *बच्चों के लिए भारत का इतिहास*	शीला धर	70.00
● *अमर शहीद रामप्रसाद बिस्मिल*	राधेश्याम 'प्रगल्भ'	40.00
● *अनकही शौर्य कथाएं*	गोविंद स्वरूप सिंघल	11.00
● *बाल बोध कथाएं*	रणवीर रांग्रा	16.00
● *बाल महाभारत*	राष्ट्रबंधु	20.00
● *बस पांच मिनट*	शकुंतला वर्मा	10.50
● *बेताल कथाएं*	वीरेश्वर भट्टाचार्या	30.00
● *भारतीय हाथी*	एम. कृष्णन	25.00
● *भारत की लोक कथाएं*	मुल्क राज आनन्द	17.00
● *भारत की वीर गाथाएं*	शिव कुमार गोयल	36.00
● *बोलने वाली गुफा*	डा. उर्मिला गुप्ता	12.00
● *चिड़ियों की दुनिया*	राजेश्वर प्रसाद	40.00
● *जंगल में मोर नाचा*	डा. श्याम सिंह शशि	8.00
● *चेतक और प्रताप*	मनोरमा जफा	25.00
● *करतबी जानवर*	दीप्ति सिंह	22.00
● *लौहपुरुष सरदार पटेल*	मुकुट बिहारी	30.00

विक्रय केन्द्र

प्रकाशन विभाग

- पटियाला हाउस, तिलक मार्ग, नई दिल्ली-110001
- सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110001
- कामर्स हाउस, करीमभाई रोड, बालार्ड पायर, मुंबई-400038
- 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-700069
- राजाजी भवन, बेसेंट नगर, चेन्नई-600090
- बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800004
- निकट गवर्नमेंट प्रेस, प्रेस रोड, तिरुअनंतपुरम्-695001
- 27/6, राम मोहन राय मार्ग, लखनऊ-226019
- राज्य पुरातत्वीय संग्रहालय बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन्स, हैदराबाद-500004
- प्रथम तल, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरा मंडल, बंगलौर-560034

पत्र सूचना कार्यालय

- सी.जी.ओ. काम्पलैक्स, 'ए' विंग, ए.बी. रोड, इंदौर (म.प्र.)
- 80, मालवीय नगर, भोपाल-462003
- के-21, नंद निकेतन, मालवीय नगर, 'सी' स्कीम, जयपुर-302003

सहकारिता का शिक्षा प्रसार में योगदान

प्रो. उमरावमल शाह*

देश के आर्थिक विकास में, विशेषत: कृषि तथा उससे जुड़े उद्योगों में सहकारी संस्थाओं का विशेष योगदान रहा है। इसके लिए एक महत्वपूर्ण तत्व सहकारिता का शिक्षा प्रसार में योगदान है। सहकारिता समान उद्देश्यों को अपनाए हुए लोगों को एक समिति के रूप में संस्थागत स्वरूप प्रदान करती है, जो विषय विशेष को लेकर सहकारी समिति के नाम से जानी जाती है। इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्र में कृषकों की कृषि सेवा सहकारी समिति या कृषि बहुउद्देश्यीय सहकारी समिति गठित होती है। इस प्रकार की समिति के सदस्य एक क्षेत्र या ग्राम विशेष के होते हैं। ग्रामीण क्षेत्र में इस प्रकार की लगभग 95,200 समितियां कार्यरत हैं जिनसे लगभग 67 प्रतिशत ग्रामीण परिवार जुड़े हुए हैं। इन सदस्यों को सहकारिता के माध्यम से 'उन्नत कृषि, उन्नत व्यवसाय और उन्नत जीवन' की शिक्षा दी जाती है। इस प्रकार सहकारिता शिक्षा कार्यक्रम केवल सिद्धांतों तक सीमित न रहकर आर्थिक विकास के कार्यकलापों तक पहुंच कर समस्त सदस्यों एवं गांवों में निवास कर रहे जन-सामान्य को प्रभावित करते हैं।

वैसे सहकारिता की संरचना के परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो सहकारिता के मान्य सात सिद्धांतों में से एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है 'सहकारी शिक्षा एवं प्रशिक्षण'। गहन विचार-विमर्श के बाद सितंबर 1995 में मेनचेस्टर में आयोजित विश्व सहकारी कांग्रेस ने इस सिद्धांत में 'सूचना' शब्द को जोड़कर इस सिद्धांत को 'सहकारी शिक्षा, प्रशिक्षण व सूचना' के व्यापक रूप में प्रतिस्थापित किया है। इस सिद्धांत के परिपालन से सहकारिता से जुड़े सदस्य विकासोन्मुख क्रियात्मक ज्ञान प्राप्त करते हुए सहकारी संगठन के माध्यम से अपने आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करते हुए अपने जीवन-स्तर को ऊंचा करते हैं। शिक्षा प्रसार में सहकारिता का योगदान समिति के सदस्यों, निर्वाचित प्रतिनिधियों, प्रबंधकों तथा कर्मचारियों को विशेष रूप से प्रभावित करता है। शिक्षा द्वारा ग्रामीण क्षेत्र में सामान्य वर्ग, विशेषत: कृषक वर्ग को व्यापक स्तर पर विकास की धारा से जोड़ा जाता है।

सहकारिता का कृषि शिक्षा प्रसार में योगदान

कृषि हमारी ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था का आधार है। कृषि को पारंपरिक पद्धति से उभारकर उसे वैज्ञानिक आधार प्रदान करना, देश के समक्ष एक महान चुनौती है। करोड़ों अशिक्षित और परंपरागत ढंग से कृषि कार्य में लगे किसानों की सोच में बदलाव लाने से ही कृषि को सुदृढ़ और लाभकारी बनाया जा सकता है। सन 1951-52 में प्रारंभ किए गए सामुदायिक विकास और राष्ट्रीय विस्तार सेवा कार्यक्रमों द्वारा किसानों को उन्नत कृषि की ओर प्रेरित किया गया तथा इसके लिए समस्त देश में संस्थागत प्रयास के रूप में शनै: शनै: ग्रामीण स्तर पर प्राथमिक सहकारी समितियां गठित की जाने लगीं जिन्हें भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने लोकतंत्र में विकास का ग्राम स्कूल और ग्राम पंचायत के साथ ग्रामीण विकास का एक आधार स्तंभ बताया। इन प्राथमिक समितियों द्वारा कृषक सदस्यों को ग्राम स्तर पर कम ब्याज पर ऋण, रासायनिक खाद, उन्नत बीज, कृषि उपकरण तथा कृषि उपज उपलब्ध कराने की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। इसके लिए सहकारी समितियों ने बड़े, छोटे और सीमांत कृषकों, खेतिहर मजदूरों, ग्रामीण दस्तकारों तथा दुग्ध उत्पादक सदस्यों को शिक्षा के माध्यम से उन्नत कृषि और उससे संबंधित व्यवसायों के बारे में गहन जानकारी देना प्रारंभ किया। अधिकांश सदस्य इस प्रकार की शिक्षा से प्रगतिशील कृषक के रूप में उभरे और सामुदायिक विकास कार्यक्रमों में भागीदार बने। इसी शिक्षा के माध्यम से भारतीय कृषक सहकारिता के द्वारा 'हरित क्रांति' और बाद में 'श्वेत क्रांति' के जनक बनने का श्रेय प्राप्त कर सके।

सहकारी समितियों द्वारा दी जाने वाली विकासोन्मुख शिक्षा में आधुनिक शिक्षा प्रणालियों का भरपूर प्रयोग हुआ जिनमें विस्तार अधिकारियों द्वारा व्यक्तिगत संपर्क, ग्राम स्तर पर सामूहिक चर्चाएं, खेतों पर भ्रमण कराकर उन्नत कृषि के सफल प्रयोग का दर्शन, प्रगतिशील कृषकों से सीधी बातचीत तथा चार्ट, पोस्टरों और फिल्मों द्वारा कृषकों के ज्ञान में वृद्धि लाई गई। कृषकों के कल्याण के लिए सहकारिता के माध्यम से शिक्षा को सशक्त माध्यम बनाया गया। इस प्रकार की क्रियात्मक और विकासोन्मुख शिक्षा आज भी देश में सहकारी समितियों के माध्यम से ग्रामवासियों को उपलब्ध कराई जा रही है। विश्व में श्रेष्ठ मानी जाने वाली सहकारी क्षेत्र की रासायनिक खाद की उत्पादक कंपनियों 'इफको' और 'कृभको' ने सहकारी समितियों के माध्यम से शिक्षा कार्यक्रमों को और व्यापक तथा प्रभावी बनाकर किसानों का रासायनिक उर्वरकों से होने वाले लाभों में विश्वास जगाया है और उन्नत कृषि अपनाने का मार्ग प्रशस्त किया है।

डेयरी शिक्षा प्रसार में योगदान

कृषि के साथ जुड़ा दुग्ध व्यवसाय भी भारतीय कृषक के आर्थिक क्रिया-कलापों का एक मुख्य आधार है। देश में गठित लगभग 70 हजार दुग्ध सहकारी समितियां अपने 80 लाख दुग्ध उत्पादक सदस्यों को डेयरी विकास के संबंध में शिक्षा प्रदान करती हैं जिससे न केवल कृषकों ने दुग्ध व्यवसाय में अपनी आय में वृद्धि की है अपितु वह डेयरी को भारत में एक गौरवशाली उद्योग का रूप दे सके हैं। डेयरी विकास शिक्षा में विशेषज्ञ डाक्टरों एवं तकनीकी विशेषज्ञों द्वारा दुधारू पशुओं की देखभाल, दुग्ध का भंडारण और दूध से संबंधित विभिन्न उत्पादों के बारे में जानकारी दी जाती है। आज अधिकांश दुग्ध उत्पादक, सहकारी समितियों से जुड़कर दुग्ध उत्पादन को एक व्यवसाय के रूप में चला रहे हैं। यह सब सहकारिता के माध्यम से प्रसार शिक्षा द्वारा संभव हुआ है।

*पूर्व प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, वैकुंठ मेहता राष्ट्रीय सहकारी प्रबंध संस्था, पुणे

महिला जागृति एवं परिवार कल्याण कार्यक्रम में योगदान

प्राथमिक सहकारी समितियों, विशेषकर महिला सहकारी समितियों और महिला दुग्ध उत्पादक सहकारी समितियों द्वारा योग्य दंपत्तियों को मातृ और शिशु कल्याण तथा परिवार नियोजन के संबंध में समिति स्तर पर घर-घर जाकर शिक्षा दी जा रही है। कई समितियां ओ.आर.एस.घोल, आयरन टेबलेट और निरोध आदि का वितरण भी करती हैं। इसके अतिरिक्त सहकारी समितियों द्वारा गर्भवती महिलाओं और पुरुषों हेतु परिवार नियोजन की स्थायी व्यवस्था तथा मातृ सुख से वंचित महिलाओं की उचित चिकित्सा की व्यवस्था भी प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों के माध्यम से सुलभ कराई जा रही है। यद्यपि इसे और व्यापक बनाने की प्रचुर संभावनाएं हैं।

महिला सहकारी समितियों ने व्यापक स्तर पर सदस्य महिलाओं को व्यवसायोन्मुख शिक्षा की व्यवस्था की है जिसमें सिलाई, कढ़ाई, बुनाई, आचार मुरब्बे बनाना तथा विभिन्न दस्तकारियों की जानकारी प्रमुख है। सहकारी शिक्षा कार्यक्रमों के अंतर्गत महिला सदस्यों के लिए विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित किए जाते हैं जिसके द्वारा उन्हें स्वास्थ्य संबंधी ज्ञान, पौष्टिक आहार, बच्चों की देखभाल, बचत की आवश्यकता एवं तरीके, रोजगार के नए-नए साधनों आदि के बारे में जानकारी दी जाती है। यह महिला शिक्षा का ही परिणाम है जिससे विकास में महिलाओं की भागीदारी बढ़ पाई है और वे अपनी आय में वृद्धि कर अपने पांव पर खड़ी हो रही हैं। कुछ महिला सहकारी समितियों ने प्रौढ़ शिक्षा का भी बीड़ा उठाया है और इसमें सफलता प्राप्त की है।

शिक्षा कार्यक्रमों के संचालन की व्यवस्था

सहकारी समितियों द्वारा समिति स्तर पर प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन होता रहता है। इन प्रशिक्षण शिविरों की अवधि पांच दिन से 28 दिन की होती है। इन शिविरों में समिति के सदस्यों को तथा चुने हुए प्रतिनिधियों और पदाधिकारियों को प्रशिक्षण दिया जाता है। इन कार्यक्रमों द्वारा सहकारी समितियां शिक्षा के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। उन्हें राष्ट्रीय सहकारी संघ, राज्य स्तर पर राज्य सहकारी संघ एवं जिलों में जिला सहकारी संघ द्वारा मार्गदर्शन दिया जाता है। इन शिक्षा कार्यक्रमों में स्थानीय शिक्षा अधिकारी, कृषि विशेषज्ञ, विकास एवं प्रसार अधिकारी, डेयरी विशेषज्ञ, परिवार नियोजन कार्यक्रम से जुड़े स्वास्थ्य अधिकारी तथा महिला विकास कार्यक्रमों के विशेषज्ञों का सहयोग लिया जाता है ताकि सहकारी शिक्षा के माध्यम से ग्रामीण एवं शहरी जनता को व्यावहारिक शिक्षा से जोड़ा जा सके और शिक्षा केवल सिद्धांतों तक ही सीमित न रहे।

सहकारिता की शिक्षा प्रसार में भावी दिशा

सन् 1904 से विधिवत प्रारंभ हुआ सहकारी आंदोलन भारत में विशाल स्वरूप ले चुका है। देश में विभिन्न प्रकार की लगभग 4 लाख 11 हजार सहकारी समितियां कार्यरत हैं जिनकी सदस्य संख्या लगभग 19 करोड़ 80 लाख है। इनमें से ग्रामीण समितियों ने भारत के शत-प्रतिशत ग्रामों तक अपनी पहुंच बनाई है। सभी स्तर पर कार्यरत विभिन्न प्रकार की सहकारी समितियां सहकारी शिक्षा कार्यक्रम अपनाकर सदस्यों को समानता के आधार पर लोकतांत्रिक पद्धति से अपने आर्थिक और सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु सक्षम भूमिका निभाने के योग्य बनाती हैं और 'एक सब के लिए और सब एक के लिए' जीने का मार्ग प्रशस्त करती हैं। इस प्रकार सहकारिता की विचारधारा अपने आप में शिक्षा की उच्चतम आकांक्षाओं की पूर्ति करती है तथा मात्र अक्षर ज्ञान के लक्ष्य से ऊपर उठकर विकासोन्मुख और क्रियात्मक शिक्षा प्रसार में योगदान करती है। एक संस्थागत प्रयास के रूप में सहकारी समितियां शिक्षा की प्रक्रिया को निरंतरता और स्थायित्व प्रदान करती हैं।

बस, आवश्यकता है तो इस बात की कि सहकारी शिक्षा के गुणात्मक स्वरूप को विकसित किया जाए तथा सहकारी शिक्षा कार्यक्रम को सीमित लक्ष्य से ऊपर उठाकर, इसे पूर्णतया विकासोन्मुख व्यावहारिक शिक्षा प्रसार का कार्यक्रम बनाया जाए।

देशव्यापी साक्षरता और प्रौढ़ शिक्षा अभियान तथा सहकारी समितियों द्वारा व्यापक स्तर पर दी जा रही विकासात्मक व्यवसायोन्मुखी शिक्षा के बीच अधिक सामन्जस्य स्थापित करना होगा ताकि शिक्षा के दोनों प्रयास एक-दूसरे के पूरक हो सकें। इसे सार्थक रूप देने हेतु शिक्षा, सहकारिता विभाग, संबंधित स्वयंसेवी संस्थाओं और सहकारी संस्थाओं के बीच आपसी सामन्जस्य को हर स्तर पर बढ़ाना होगा और उसे ग्राम स्तर पर सहकारी संस्था के प्रयासों से जोड़ना होगा। इसमें सहकारी समितियों के सदस्यों और पदाधिकारियों को भी महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी ताकि वे भी देशव्यापी साक्षरता अभियान के साथ सक्रिय रूप से जुड़ सकें। ❑

पृष्ठ 22 का शेष **(घट रहा है पानी)**

मिट्टी और पत्थर से पद्मश्री और पद्मविभूषण से सम्मानित—अण्णा हजारे की अगुआई में महाराष्ट्र के गांव रालेगन सिद्धी में जो जल भंडार तैयार किए गए हैं, उनके निष्कर्ष समाज के सर्वांगीण विकास, समृद्धि और रोजगार के इतने ठोस आधार बने हैं कि वे जल संग्रहण की अभियांत्रिकी तकनीक (वाटर रिसोर्सेज इंजीनियरिंग टेक्नोलाजी) और रोजगारमूलक सरकारी कार्यक्रमों के लिए जबरदस्त चुनौती साबित हुए हैं।

अण्णा हजारे द्वारा ईजाद किए गए कुशल जल प्रबंधन पर्यावरण की तीन समस्याओं का निदान खोजने में भी सहायक हैं। इस तकनीक से भूगर्भीय जल स्तर बढ़ा है, भू-क्षरण रुका है और बड़े बांधों के जल रिसाव से खेती में हजारों बीघा जमीन दलदल बन जाती है। ऐसी तकनीक ईजाद करने में हमारे वैज्ञानिक और इंजीनियर नाकाम रहे हैं। जल संग्रह की इन तकनीकों की एक खासियत यह भी है कि इनकी संरचना में किसी भी सामग्री को बाहर से लाने की जरूरत नहीं है। स्थानीय मिट्टी, पानी और पत्थर से ही जल संग्रह की ये सफल तकनीकें तैयार होती हैं। यदि इन तकनीकों का गंभीरता से अनुसरण नहीं किया गया तो राष्ट्र को जल समस्या से कोई अन्य तकनीक नहीं उबार सकती। ❑

ऊर्जा अंकेक्षण : एक अनिवार्यता

योगेश उपाध्याय*
डा. शिवकुमार सिंह कुशवाह**

ऊर्जा की खपत किसी भी देश के विकास का एक मापदंड है। ऊर्जा के बिना आज जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। ऊर्जा पैदा करने के कई साधन हैं, जैसे जल, ताप, पवन, परमाणु आदि। हाल के दिनों में समुद्र की लहरों से भी ऊर्जा पैदा करने का सफल प्रयास किया गया है।

भारत की बढ़ती हुई जनसंख्या ऊर्जा उत्पादन के लिए चुनौती बन गई है। अल्प वित्तीय साधनों एवं तकनीकी जानकारी को दृष्टिगत रखते हुए ऊर्जा की आवश्यकतानुसार पूर्ति कठिन हो रही है। ऊर्जा की उपलब्धता को दो कोणों से सुनिश्चित किया जा रहा है।

प्रथमत: सरकार द्वारा यह मान लिया गया है कि उसके पास आवश्यक ऊर्जा उत्पादन के लिए समुचित संसाधन नहीं है। अत: उसके द्वारा यह क्षेत्र निजी निवेशकों हेतु खोल दिया गया है। महाराष्ट्र, उड़ीसा, कर्नाटक और अन्य कई राज्यों में निजी निवेशकों द्वारा ऊर्जा उत्पादन परियोजनाएं वृहत्त स्तर पर शुरू की जा रही हैं। इससे निश्चित रूप से मांग के अनुरूप ऊर्जा की पूर्ति में सहायता मिलेगी।

दूसरी ओर सरकार द्वारा वर्तमान में स्थापित ऊर्जा तंत्र को मितव्ययी बनाने का प्रयास किया जा रहा है। ऊर्जा का अपव्यय रोकने हेतु कार्यक्रम सुनिश्चित किए जा रहे हैं। इसी दिशा में एक कदम है, ऊर्जा अंकेक्षण।

ऊर्जा अंकेक्षण

ऊर्जा अंकेक्षण के अंतर्गत उत्पादित ऊर्जा के पूर्ण और उचित उपयोग हेतु आवश्यक सभी पहलुओं का अध्ययन किया जाता है। ऊर्जा आडिट ऊर्जा की खपत का लेखा-जोखा है। इससे इस बात का पता चलता है कि किसी औद्योगिक अथवा व्यावसायिक उपक्रम में ऊर्जा की कितनी आवश्यकता है तथा कितनी वास्तविक खपत हुई है। यदि अतिरिक्त खपत हुई तो उसकी वजह क्या थी? क्या संयंत्रों, उपकरणों के अधिक संचालन अथवा किसी तकनीकी खराबी के कारण ऐसा हुआ? इससे बिजली की चोरी का भी पता चलता है। पारेषण और वितरण के दौरान हानियों का भी अध्ययन कर उन्हें कम करने हेतु सुझाव दिए जाते हैं। इसके अतिरिक्त प्रशासनिक एवं वित्तीय बाधाएं जो ऊर्जा के अनुकूलतम उपयोग के मार्ग में आती हैं, उनका पता लगाकर उन्हें दूर करने ने सुझाव दिए जाते हैं।

भारत में ऊर्जा अंकेक्षण

भारत में ऊर्जा आडिट की अवधारणा वैसे तो बहुत पुरानी है, किंतु इसे वास्तविक रूप में अप्रैल 1991 में लागू किया गया। तब पहली बार केंद्रीय विद्युत प्राधिकरण ने ऊर्जा आडिट के बारे में राज्य बिजली बोर्डों तथा विद्युत विभागों के लिए दिशा-निर्देश जारी किए थे।

केंद्र सरकार ने दिसंबर 1996 में ऊर्जा आडिट को अनिवार्य बनाने का निर्णय राज्यों के मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में किया। इसके तहत 100 किलोवाट से ऊपर सभी उपभोक्ताओं के लिए ऊर्जा आडिट कराना आवश्यक है। व्यावहारिक अड़चनों के कारण केंद्र द्वारा यह जिम्मेदारी राज्यों को सौंप दी गई।

प्रगति

अभी तक केवल चार राज्यों ने ही अपने यहां इसे लागू किया है। ये राज्य हैं— तमिलनाडु, केरल, पश्चिम बंगाल और महाराष्ट्र। कुछ अन्य राज्यों के बारे में इस दिशा में प्रगति दर्ज की गई है, वे हैं—कर्नाटक, उड़ीसा, गुजरात, हरियाणा तथा राजस्थान। परंतु अभी ज्यादातर राज्यों में स्थिति संतोषजनक नहीं है।

निष्कर्ष

ऊर्जा अंकेक्षण एक समग्र व्यवस्था है। इसका उद्देश्य ऊर्जा का अनुकूलतम उपयोग है। जितना शीघ्र संभव हो सभी राज्यों को इसे लागू करना चाहिए। ❑

*प्रभारी एवं प्रवक्ता वाणिज्य संकाय, महात्मा गांधी ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट, सतना (म.प्र.)
**प्रवक्ता, वाणिज्य एवं प्रबंध संकाय, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

ग्रामीण विकास में

सड़क परिवहन का महत्व

डा. मोहम्मद हारून *

किसी भी देश के आर्थिक जीवन में सड़क परिवहन का बहुत महत्व होता है। यदि कृषि और उद्योग धंधे किसी देश के आर्थिक जीवन के शरीर और हड्डियां मानी जाएं तो सड़क परिवहन को उस आर्थिक ढांचे की धमनियां माना जा सकता है। इसके बगैर किसी भी देश का आर्थिक और सामाजिक जीवन लड़खड़ा ही नहीं जाता अपितु निष्प्राण हो जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में सबसे बाधक तत्व यातायात की अपर्याप्तता या अभाव होता है क्योंकि ग्रामीण विकास, सड़क परिवहन पर आश्रित है। इसके अभाव में ग्रामीण विकास की संभावना कम हो जाती है। ग्रामीण अंचलों में स्थानीय उत्पादों (कृषि उत्पादनों) का संकलन एवं उन्हें शहर भेजना तथा शहर से वस्तुएं मंगाना और उनका वितरण तथा विविध प्रकार की सेवाएं सड़क परिवहन की उपलब्धता पर ही निर्भर करती हैं, ग्रामीण अंचलों में व्यापार और सड़क परिवहन एक दूसरे से पूरी तरह संबद्ध हैं। सड़क परिवहन विभिन्न क्षेत्रों के बीच पारस्परिक संबंधों का माप है। वास्तव में सड़क परिवहन किसी भी क्षेत्र की उन्नति दर्शाने वाला दर्पण होता है।

सड़कें प्राचीन काल से

अति प्राचीन काल से भारतीय सड़कों का महत्व समझते रहे हैं और यह सिद्ध हो चुका है कि ईसा से 3,500 वर्ष पूर्व भारत में सड़कें थीं। रामायण, महाभारत तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र आदि ग्रंथों में सड़कों का विवरण मिलता है। मुगल शासकों ने भी सड़कों के विकास में विशेष रुचि दिखाई। भारतीय सड़कों को आधुनिक अंतर्प्रांतीय राजमार्गों का रूप देने का श्रेय सुल्तान शेरशाह सूरी को है जिन्होंने सर्वप्रथम आज के जी.टी. रोड के मार्ग का निर्धारण और निर्माण कराया था। बाद में मुगलों के शासनकाल और उसके पश्चात ब्रितानी युग में सड़कों का अधिक विकास हुआ। अंग्रेजों ने महत्वपूर्ण व्यापारिक सड़कों की ओर ध्यान दिया। सन् 1855 में सड़कों के निर्माण का कार्य सार्वजनिक विभाग को सौंप दिया गया। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात 1917 में भारतीय सड़क विभाग समिति नियुक्त की गई जिसने सड़कों के विकास पर जोर दिया तथा सड़क निधि संचय की स्थापना की। केंद्रीय सरकार ने 1929 में सड़क निधि और 1934 में भारतीय सड़क कांग्रेस नामक अर्द्ध-सरकारी संस्था की स्थापना की। इसका उद्देश्य सड़कों के विकास से संबंधित विषयों पर विचार-विमर्श करना तथा इससे संबंधित ज्ञान और अनुभव का संचय करना था। दिसंबर 1943 में सड़कों के विकास के लिए 'नागपुर योजना' बनाई गई। इस योजना में 448 करोड़ रुपये की लागत से 4 लाख मील लंबी सड़कें बनाने का प्रावधान था।

आजादी के बाद विशेष ध्यान

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सड़कों के विकास पर काफी ध्यान दिया गया। प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाओं और तीन वार्षिक योजनाओं में 1,135 करोड़ रुपये सड़कों के विकास पर व्यय किए गए जबकि चौथी, पांचवीं और छठी पंचवर्षीय योजनाओं तथा दो वार्षिक योजनाओं में कुल 8,160 करोड़ रुपये सड़कों के विकास पर व्यय किए गए। सातवीं पंचवर्षीय योजना में सड़कों के विकास पर 6,180 करोड़ रुपये व्यय किए गए, जबकि आठवीं पंचवर्षीय योजना में सड़कों पर 12,833 करोड़ रुपये व्यय करने का प्रावधान किया गया।

देश में 1950-51 में कुल 4 लाख किलोमीटर लंबी सड़कें थीं, जिनकी लंबाई 1960-61 में 5.24 लाख किलोमीटर, 1970-71 में 9.18 लाख किलोमीटर, 1980-81 में 14.91 लाख किलोमीटर तथा 1990-91 में 20.4 लाख किलोमीटर तथा वर्तमान समय में लगभग 20.5 लाख किलोमीटर हो गई है। लेकिन इनमें से केवल 10.25 लाख किलोमीटर लंबाई की सड़कें ही पक्की कही जा सकती हैं। इन पक्की सड़कों की गुणवत्ता का स्तर आधुनिक युग की मांगों के अनुसार नहीं है। वाहनों की संख्या और भार परिवहन की प्रौद्योगिकी में तेजी से हुए परिवर्तन और वृद्धि को देखते हुए भारतीय सड़कें अभी आदिम युग में हैं। इन सड़कों पर पड़ने वाले पुलों और पुलियों की क्षमता भी अपर्याप्त है और इनका रख-रखाव भी संतोषप्रद नहीं है। जो कच्ची सड़कें हैं, उनमें आधी से भी अधिक मोटर वाहन चलाए जाने योग्य नहीं हैं क्योंकि इनका धरातल कमजोर है। भारत

* प्रवक्ता, भूगोल विभाग, एस.एन. (पी.जी.) कालेज, आजमगढ़ (उ.प्र.)

के विभिन्न राज्यों में सड़कों की लंबाई असंतुलित है जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट है:

भारत में सड़कों का क्षेत्रीय प्रतिरूप, 1996

प्रदेश	पक्की (कि.मी.)	कच्ची (कि.मी.)	योग (कि.मी.)	प्रति लाख जनसंख्या पर सड़कों की लंबाई (कि.मी.)	प्रति हजार वर्ग कि.मी. क्षेत्र पर सड़कों की लंबाई (कि.मी.)	कुल गांवों का प्रतिशत जहां सड़क सुविधा नहीं हैं
आंध्र प्रदेश	75.2	68.7	158.9	207	38	61
असम	9.8	54.9	64.7	305	73	47
अरुणाचल प्रदेश	2.1	4.9	7.0	—	—	—
उत्तर प्रदेश	87.1	100.4	188.0	178	64	91
उड़ीसा	19.3	154.3	173.6	457	74	98
कर्नाटक	87.8	65.8	153.6	301	55	71
केरल	40.2	172.6	212.8	366	232	—
गुजरात	65.3	11.5	76.8	162	27	45
गोआ	3.8	2.1	5.9	—	—	—
जम्मू-कश्मीर	7.6	5.4	13.0	303	8	41
तमिलनाडु	127.4	66.2	153.6	360	130	47
नगालैंड	5.7	2.3	8.0	826	35	35
पश्चिम बंगाल	28.8	32.6	61.4	269	158	55
पंजाब	42.2	11.8	54.0	285	91	1
बिहार	30.5	54.4	85.9	120	46	70
मणिपुर	2.6	4.2	6.8	632	40	77
मेघालय	2.4	3.7	6.1	284	16	49
मिजोरम	1.4	2.0	3.4	—	—	—
महाराष्ट्र	140.8	75.9	216.7	274	53	66
मध्य प्रदेश	73.4	54.5	128.9	202	23	79
राजस्थान	55.7	55.0	111.7	186	18	83
सिक्किम	1.4	0.1	1.5	—	—	—
हरियाणा	23.6	2.1	25.7	243	67	2
हिमाचल प्रदेश	11.0	13.0	24.0	581	43	60
त्रिपुरा	4.2	9.8	14.0	392	75	60
भारत	964.1	1,034.3	2,004.4	—	—	—

भारत की सड़कों का क्षेत्रीय वितरण जैसा कि उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है, बिलकुल असमान है। भारत जो गांवों का देश है वर्तमान समय में यहां पांच लाख से अधिक गांव हैं, जिनमें देश की लगभग तीन-चौथाई जनसंख्या निवास करती है। लेकिन देश के मात्र 46.2 प्रतिशत गांव ही हर मौसम में यातायात योग्य सड़कों से जुड़े हुए हैं। शेष गांवों में कच्ची सड़कें एवं पगडंडियां ही आवागमन के लिए उपलब्ध हैं। आज भी उड़ीसा के 98 प्रतिशत, उत्तर प्रदेश के 91 प्रतिशत, राजस्थान के 83 प्रतिशत, मध्य प्रदेश के 79 प्रतिशत, मणिपुर के 77 प्रतिशत, कर्नाटक के 71 प्रतिशत, बिहार के 70 प्रतिशत, महाराष्ट्र के 66 प्रतिशत, आंध्र प्रदेश के 61 प्रतिशत, त्रिपुरा के 60 प्रतिशत तथा हिमाचल प्रदेश के 60 प्रतिशत गांव सड़क सुविधा से वंचित हैं। इस दृष्टिकोण से सुविधासंपन्न राज्यों में केरल, पंजाब तथा हरियाणा अग्रणी राज्य हैं जहां लगभग सभी गांवों तक सड़कों का विस्तार हो गया है। इनके अतिरिक्त अन्य राज्यों की स्थिति संतोषजनक नहीं है। सड़कों के अभाव में किसान अपने कृषि उत्पाद को निकटस्थ मंडी, कस्बे अथवा नगर तक नहीं पहुंचा पाते। फलतः गांवों के सेठ, साहुकार एवं खुदरा क्रेता उनका माल कम कीमत पर खरीद लेते हैं तथा किसानों को विवश होकर क्षति उठानी पड़ती है। उपभोक्ता के रूप में किसानों को हानि उठानी पड़ती है क्योंकि सड़कों के अभाव में किसान शहरों से उत्तम प्रकार के बीज, रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक दवाओं, नवीन कृषि उपकरण, सिंचाई के साधन, कपड़ा, साबुन, तेल तथा अन्य जीवनोपयोगी वस्तुएं लाने में कठिनाई अनुभव करते हैं। गांवों के बनिये शहर से मंगाई गई चीजों को अधिक कीमत पर बेचकर किसानों का शोषण करते हैं। परिणामतः ग्रामीणों की गरीबी में वृद्धि होती है।

वर्षा ऋतु में परिवहन व्यवस्था ठीक न होने के कारण अधिकांश ग्रामीण इलाकों से नगरीय इलाकों तक पानी में से गुजर कर जाना पड़ता है। ऐसे समय में रोगी को अस्पताल पहुंचाना पड़े तो डोली या पालकी जैसे साधनों का सहारा लेना पड़ता है। बाढ़ के समय ग्रामीण अंचलों के विभिन्न मार्गों का संपर्क नगरों से टूट जाता है तथा लोगों को नगरों तक पहुंचने में अत्यंत कठिनाई उठानी पड़ती है। सड़क मार्गों के अभाव में हमारे देश के ग्रामीण अंचलों की लगभग 70 प्रतिशत प्रसूतिकाओं को समय पर निकटस्थ मातृसदन में नहीं पहुंचाया जा सकता और न ही मातृसदन और परिवार कल्याण केंद्र के चिकित्सक वहां पहुंच पाते हैं। फलतः बच्चा एवं जच्चा के मृत्यु का शिकार होने की आशंका रहती है। सच पूछा जाए तो ग्रामीण अंचलों में रहने वालों के आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन पर सड़क परिवहन के अभाव का प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। गांवों की दयनीय दशा के लिए सड़क मार्गों का अभाव एक प्रमुख कारण है।

देश का अर्थतंत्र तथा जनसंख्या का बढ़ता हुआ भार मुख्य रूप से कृषि पर ही आधारित है। अतएव ग्रामीण इलाकों को नगरीय इलाकों से जोड़ना अनिवार्य है। इसके लिए देश के सभी गांवों में सड़कों का जाल बिछा दिया जाए। पक्की सड़कें हों, आवश्यकतानुसार नदियों और नालों पर पुलों तथा पुलियों का निर्माण किया जाए ताकि सभी वाहन आसानी से आ-जा सकें तथा ग्रामीण अंचलों का नगरीय इलाकों और कृषि मंडियों से पूरे वर्ष संपर्क बना रहे। किसान अपने कृषि उत्पाद को कृषि मंडियों व नगरीय इलाकों में आसानी से ले जाकर उचित मूल्य प्राप्त कर सकें तथा अपनी आवश्यकता की विविध वस्तुएं जैसे— उत्तम बीज, उत्तम खाद, कीटनाशक दवाएं तथा कृषि उपकरण उचित मूल्य पर प्राप्त कर सकें। सड़क परिवहन तंत्र का विकास हो जाने पर ग्रामीण अंचलों में कृषि आश्रित, वन अश्रित एवं स्थानीय कच्ची सामग्री पर आधारित उद्योगों का विकास हो सकेगा, रोजगार के अवसर बढ़ेंगे तथा शिक्षा, चिकित्सा, जन सुरक्षा, संचार, बैंकिंग एवं विपणन व्यवस्था जैसी सेवाएं सुलभ हो सकेंगी। इससे कृषकों का जीवन स्तर ऊंचा होगा तथा ग्रामीण विकास की संभावनाओं को बल मिलेगा। ❑

अ नु वि नि

प्रस्ताव

राज्य स्तर की अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति
निगमों तथा अन्य अधिकृत अभिकरणों के माध्यम से गरीबी रेखा की सीमा से दुगुने तक
की आय वाले अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति वर्ग के लिए आय एवं रोजगारोन्मुख अवसर
उत्पन्न करने के लिए कृषि, यातायात, सेवा क्षेत्र, बागवानी, पशुपालन, लघु उद्योग
जैसी व्यवहार्य योजनाओं को मंजूर करते हुए अनुसूचित जाति एवं
अनुसूचित जनजाति वर्ग को ब्याज की
रियायती दरों पर वित्तीय
सहायता प्रदान
की जा
रही है।

****

31 अगस्त, 1997 को 874.46 करोड़ रुपये की 1,126 योजनाएं मंजूर की गई जिसमें निगम का 535.70 करोड़ रुपये का सहयोग रहा। 2.14 लाख लाभग्राहियों को लाभ देते हुए संचयी निबल वितरण 349.888 करोड़ रुपये बढ़ा।

****

8,267 अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के लाभग्राहियों को लाभ देते हुए 203 प्रशिक्षण कार्यक्रम स्वीकृत किए।

****

कृपया विस्तृत विवरण हेतु सम्पर्क करें :

राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति वित्त एवं विकास निगम,
(भारत सरकार का उपक्रम)
8, बंगलाजी एस्टेट, गुरु रविदास मार्ग, कालकाजी,
नई दिल्ली-110019

टेलीफोन नं. : 6468936, 38, 40, 46
6227659, 69, 6473115, 16
फैक्स : (011) 6468943

अथवा

संबंधित राज्य के अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति वित्त निगम

****

उत्तर प्रदेश

गन्ना विकास बनाम ग्राम्य विकास

हरि विश्नोई

गन्ना बाहुल्य होने के कारण उत्तर प्रदेश को गन्ने का प्रदेश कहा जाता है। देश भर का आधे से अधिक गन्ना क्षेत्रफल अकेले उत्तर प्रदेश में है। फलस्वरूप देश भर की 426 चीनी मिलों में से 118 चीनी मिलें उत्तर प्रदेश में हैं। गन्ने की नगदी फसल ने इस प्रदेश के लाखों किसानों के जीवन में समृद्धि की जो मिठास घोली है, उसकी स्पष्ट झलक यहां के जन-जीवन में दृष्टिगोचर होती है।

गन्ना विकास विभाग, चीनी मिलों तथा सहकारी गन्ना विकास समितियों के माध्यम से जो विभिन्न योजनाएं तथा कल्याणकारी कार्यक्रम गन्ना उत्पादकों की सहायतार्थ तथा सघन गन्ना विकास के उद्देश्य से उत्तर प्रदेश में चलाए जा रहे हैं, उन्होंने ग्रामीण क्षेत्रों के सर्वांगीण विकास की गति को तेज किया है। उदाहरण के लिए, चीनी मिलों को ताजा गन्ना शीघ्र पहुंचाने के उद्देश्य से गन्ना बाहुल्य ग्रामीण क्षेत्रों में संपर्क मार्ग तथा पुलिया निर्माण का कार्यान्वयन किया जा रहा है। यह योजना 1976 से निरंतर चल रही है। दो दशकों में इस योजना से गांवों में सड़क यातायात की स्थिति में काफी सुधार हुआ है। पक्की सड़क की सुविधा गांवों के लिए विकास के अन्य द्वार खोलती है। यह बात सच है कि उत्तर प्रदेश में मध्य तथा पश्चिमी क्षेत्र अत्यंत उपजाऊ तथा हरा-भरा है।

फिर भी ग्रामीण सड़कों से न केवल गन्ना उत्पादक लाभान्वित हुए हैं बल्कि सभी ग्रामीणों को इसका लाभ मिला है। इसी प्रकार चीनी मिलों से ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार, बिजली, औद्योगिक विकास तथा अन्य विभिन्न प्रकार की सुविधाएं प्राप्त हुई हैं। स्कूल तथा अस्पताल खुले हैं क्योंकि चीनी मिलें अपनी परिधि क्षेत्र का समग्र विकास करने में विशेष रुचि लेती हैं। ये तो चंद उदाहरण हैं। गन्ना विकास से ग्रामीण विकास की दिशा में यहां बहुत कुछ हुआ है तथा हो रहा है।

उत्तर प्रदेश में गन्ना : गौरवपूर्ण इतिहास

गन्ने की खेती हमारे देश में अत्यंत प्राचीन काल से हो रही है। विश्व के दूसरे देशों में गन्ना भारत से ही गया है। भारत में गन्ने की भरपूर फसल में उत्तर प्रदेश का स्थान सदैव अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ में स्थित है। इसके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश गन्ना शोध परिषद, शाहजहांपुर तथा सेवरही में भी गन्ना अनुसंधान का कार्य किया जाता है।

उत्तर प्रदेश में देवरिया के प्रतापपुर नामक स्थान पर 1903 में भारत की दूसरी प्राचीनतम चीनी मिल स्थापित की गई थी। परंतु गन्ना क्रय-विक्रय की कोई स्थापित पद्धति के अभाव में गन्ना किसानों को अनेकों कठिनाइयां होती थीं। भारत सरकार द्वारा पारित शुगर केन एक्ट 1934 द्वारा प्रदेशीय सरकारों को, किसी क्षेत्र को नियंत्रित करते हुए वैक्यूम पैन चीनी मिलों द्वारा प्रयुक्त होने वाले गन्ने का न्यूनतम मूल्य निर्धारित करने के लिए अधिकृत किया गया था। परिणामस्वरूप उत्तर प्रदेश में 1935 में कृषि से अलग होकर गन्ना विकास विभाग स्थापित हुआ। सरकार ने गन्ना कृषकों को मदद देने की दृष्टि से शुगर फैक्ट्रीज कन्ट्रोल एक्ट 1938 लागू किया। वर्ष 1953-54 में इसके स्थान पर उत्तर प्रदेश गन्ना पूर्ति तथा खरीद विनियमन लागू हुआ।

उत्तर प्रदेश में कार्यरत इस गन्ना विकास विभाग के मुख्य उद्देश्य तथा कार्य हैं :

- गन्ना विकास कार्यों के संचालन से गन्ने की प्रति हेक्टेयर औसत उपज में वृद्धि करना।
- चीनी मिलों को उनकी आवश्यकतानुसार गन्ने की पूर्ति कराना तथा गन्ना किसानों को चीनी मिलों से गन्ने की कीमत का भुगतान सुनिश्चित करना।
- खाण्डसारी इकाइयों तथा खड़े कोल्हुओं को चलाने की स्वीकृति देना तथा उनसे क्रय-कर वसूलना।

इसके अतिरिक्त प्रथम चरण में 4.80 करोड़ रुपये की लागत से उत्तर प्रदेश के पचास अम्बेडकर ग्रामों को चीनी मिलों से जोड़ने का कार्य पूरा हो चुका है। दूसरे चरण में करीब 8 करोड़ रुपये की लागत से 25 गांवों को अंतर्ग्रामीण सड़कों के माध्यम से जोड़ने का कार्य किया जा रहा है। इस प्रकार उत्तर प्रदेश के गन्ना बाहुल्य गांवों का विकास गन्ना विकास के माध्यम से बहुत तेजी के साथ हो रहा है। फलस्वरूप उत्तर प्रदेश के 118 चीनी मिल क्षेत्रों में पड़ने वाले लगभग 80 हजार गन्ना बाहुल्य गांवों की काया-पलट हो गई है क्योंकि लाभकारी मूल्य के रूप में चीनी मिलों द्वारा प्रतिवर्ष करीब 32 अरब रुपये की विपुल धनराशि का भुगतान सहकारी गन्ना समितियों के माध्यम से किया जाता है। इससे गन्ना उत्पादकों की क्रय-शक्ति बढ़ती है तथा उनके रहन-सहन का स्तर ऊंचा उठता है। यहां अनुसूचित जाति, जनजाति तथा निर्बल वर्ग के सदस्यों के उत्थान पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। समस्त गन्ना विकास कार्यक्रमों का 23 प्रतिशत हिस्सा निर्बल वर्ग के लिए आरक्षित किया गया है तथा सहकारी गन्ना समितियों का सदस्य बनाने के लिए अब उन्हें मात्र 20 रुपये का एक अंश ही खरीदना पड़ता है। सहकारी गन्ना समितियां अपने सदस्यों की गन्ना आपूर्ति चीनी मिलों को करती हैं। उन्हें गन्ना मूल्य का शीघ्र भुगतान कराती हैं। ऋण तथा कृषि निवेश की सुविधाएं उपलब्ध कराती हैं। साथ ही स्कूल, अस्पताल, सड़क तथा पुलिया आदि की व्यवस्था भी करती हैं। प्रदेश की सहकारी गन्ना समितियों में खाद गोदाम, कार्यालय भवन तथा कंप्यूटरीकृत व्यवस्था लागू की गई है।

1996-97 में उत्तर प्रदेश चीनी उत्पादन करने के मामले में देश भर में प्रथम रहा है। प्रदेश के विभिन्न गांवों में चीनी मिलों के अतिरिक्त कोल्हू तथा खांडसारी की इकाइयां भी उत्पादन करती हैं। प्रदेश में 1996-97 में

25 लाख हेक्टेयर भूमि में गन्ना बोया गया था। फलस्वरूप 1,475 लाख मेगा टन गन्ने का उत्पादन हुआ था। कुल 118 चीनी मिलों ने 428.73 लाख मेगा टन गन्ना पेर कर 40.28 लाख मेगा टन चीनी का उत्पादन किया था। शेष गन्ने का अधिकांश हिस्सा कोल्हू तथा खांडसारी इकाइयों द्वारा पेरा गया था। गन्ने की खेती से कृषकों को नगद दाम मिल जाते हैं।

प्रदेश में गन्ना विकास योजनाएं

जिला सेक्टर

- सघन गन्ना विकास की योजना :
  1. उन्नतशील बीज गन्ना उत्पादन कार्यक्रम
  2. बीज उपचार एवं भूमि उपचार कार्यक्रम
  3. पेड़ी गन्ने पर यूरिया घोल छिड़काव कार्यक्रम,
- अंतर्ग्रामीण सड़क निर्माण कार्यक्रम।

राज्य सेक्टर

- हवाई तथा स्थलीय विधि से कीट नियंत्रण योजना,
- नई चीनी मिल क्षेत्र में अंतर्ग्रामीण सड़क निर्माण योजना।

केन्द्रीय सरकार से सहायता प्राप्त गन्ना विकास योजना

इसके अंतर्गत फील्ड प्रदर्शन, कृषक प्रशिक्षण, कृषि यंत्र वितरण, बीज-संवर्द्धन/उत्पादन कार्यक्रम, गन्ना उत्पादकता पुरस्कार, टीशू कल्चर प्रयोगशाला स्थापन, बायोपेस्टीसाइड प्रयोगशाला स्थापन तथा हीट ट्रीटमैंट प्लांट की स्थापना कार्यक्रम आदि चलाए जा रहे हैं।

गन्ना उत्पादकता में वृद्धि हेतु प्रचार-प्रसार

प्रति हेक्टेयर गन्ना उत्पादकता में वृद्धि के लिए गन्ना विकास विभाग का अपना एक स्वतंत्र प्रसार संगठन है जो गन्ना आयुक्त के अधीन मुख्य प्रचार-अधिकारी के नेतृत्व में कार्यरत है। क्षेत्रीय स्तर पर क्षेत्रीय प्रचार अधिकारी तथा गन्ना विकास परिषद स्तर पर प्रचार निरीक्षक द्वारा तकनीकी हस्तांतरण का कार्य होता है। प्रचार सभाएं, चलचित्र प्रदर्शन, प्रचार साहित्य वितरण, प्रदर्शनियों, सांस्कृतिक कार्यक्रमों, रेडियो, टेलीविजन वार्ताएं तथा प्रेस विज्ञप्तियों द्वारा नवीन गन्ना शोध संस्तुतियों को किसानों तक पहुंचाया जाता है। गन्ना फसल प्रतियोगिताओं के माध्यम से किसानों को अधिक उत्पादन के लिए प्रोत्साहित भी किया जाता है।

प्रतिवर्ष त्रिस्तरीय गन्ना प्रतियोगिताओं में एक हजार कृषक विजेताओं को अधिक उपज प्राप्त करने के आधार पर दस लाख रुपये के नगद पुरस्कार प्रदान किए जाते हैं। प्रगतिशील गन्ना उत्पादकों को देश-विदेश का भ्रमण कराया जाता है ताकि वे अपने ज्ञान तथा अनुभव से उच्च उत्पादकता प्राप्त कर सकें। वर्ष 1997-98 के लिए उत्तर प्रदेश में गन्ना क्षेत्रफल, प्रति हेक्टेयर गन्ने की औसत उपज तथा कुल गन्ना उत्पादन का लक्ष्य क्रमशः 2,420 हजार हेक्टेयर, 61.5 टन प्रति हेक्टेयर तथा 1,488.30 लाख मेगा टन निर्धारित किया गया है। प्रदेश में कुल 118 गन्ना विकास परिषदें तथा 168 सहकारी गन्ना विकास समितियां हैं।

उत्तर प्रदेश की 32 चीनी मिलें सहकारी क्षेत्र में, 35 सार्वजनिक क्षेत्र में तथा शेष 50 निजी क्षेत्र में कार्यरत हैं। सहकारी चीनी मिलों की एक शीर्ष संस्था उत्तर प्रदेश सहकारी चीनी मिल संघ का गठन 1963 में किया गया था। यह संघ लखनऊ में कार्यरत है। उत्तर प्रदेश में पहली सहकारी चीनी मिल 1959 में नैनीताल जिले के बाजपुर नामक स्थान पर लगाई गई थी। चार दशक की लंबी यात्रा में सहकारी क्षेत्र में गन्ना विकास तथा चीनी उत्पादन की उपलब्धियां उल्लेखनीय रही हैं। सहकारी क्षेत्र में सराहनीय कार्य होने से यहां के गांवों तथा ग्रामीणों की प्रगति का ग्राफ तेजी के साथ ऊपर उठा है जो कि निःसंदेह स्वागत-योग्य तथा उत्साहवर्द्धक है। जिस प्रकार मध्य प्रदेश को सोयाबीन की फसल ने एक नई दिशा दी है, उसी प्रकार उत्तर प्रदेश में गन्ने की खेती खूब विकसित हुई है। इसका एक बड़ा कारण यह भी है कि देश में सूती वस्त्र उद्योग के पश्चात चीनी उद्योग का स्थान आता है जो प्रमुख फसल गन्ने पर आधारित उद्योग है। अतः गन्ना विकास के माध्यम से ग्रामीण विकास की गति तेज होना स्वाभाविक है। ❑

पृष्ठ 9 का शेष **(बाल भिक्षु प्रथा : बच्चों के लिए अभिशाप)**

- केंद्र सरकार प्रत्येक राज्य तथा केंद्रशासित राज्यों को अलग से बाल भिक्षु प्रथा पर रोक लगाने के लिए उनके स्तर से अनिवार्यतः नए-नए कार्यक्रम प्रारंभ करना सुनिश्चित करे।
- समाज में व्याप्त गरीबी, भुखमरी, अशिक्षा, बेरोजगारी आदि विषमताओं को कम करके, बाल भिक्षु प्रथा को जन्म देने वाले घटकों को रोजगार मुहैया कराकर भी इस प्रथा को कम किया जा सकता है।
- भारतीय बाल कोष की भी स्थापना की जाए जिसमें विश्व स्तर से मुक्त हस्त से दान स्वीकार किया जाए। उस राशि से इस प्रकार के बाल भिक्षुओं की शिक्षा, रोजगार तथा आवासीय समस्या हल की जा सकती है।
- खादी ग्रामोद्योग आयोग जैसी संस्थाएं बाल भिक्षुओं के लिए रोजगारोन्मुख कार्यक्रम लागू कर, अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती हैं जैसे—मधुमक्खी पालन, रेशम उद्योग, वृक्षारोपण, पुष्प चुनना तथा बाल स्तरीय कई अन्य रोजगार मुहैया कराकर इन बच्चों के कल्याण की दशा में कार्य किया जा सकता है।

यह कहना समीचीन है कि समाज में बाल-भिक्षुओं के प्रति मानवीय संवेदनाएं पैदा करने की प्रमुख आवश्यकता है। इन्हें विकास के अच्छे अवसर देना आज राष्ट्रीय तथा मानवीय धर्म है, तभी ये राष्ट्रीय विकास की प्रमुख धारा से जुड़ सकेंगे। इनका बचपन निरापद है जिसे छीना नहीं जाना चाहिए। अपितु इन्हें जीवन जीने का अधिकार देकर एक 'आदर्श अवधारणा' की कल्पना को साकार किया जा सकता है। ❑

कुरुक्षेत्र 40 वर्ष पहले

विनोबा जी के साथ दस मील*

अनिल सी. शाह

'कन्याकुमारी तो यहां सदैव बनी रहेगी, पर विनोबा जी तो यहां हमेशा नहीं रहेंगे। अगर मैं चाहूं तो कन्याकुमारी तो फिर भी आ सकता हूं पर विनोबा जी से मिलने का यह सुनहरा अवसर नहीं खोना चाहिए'—मैंने मन ही मन सोचा। मैंने किराए पर टैक्सी कर ली और रात के 10 बजे से सुबह के तीन बजे तक चांदनी रात में कन्याकुमारी की सैर की। फिर मैं नागरकायल की ओर रवाना हो गया। अपने साथियों से मैंने कह दिया कि त्रिवेन्द्रम वापस लौटते समय वे मुझे अपने साथ ले लें।

विनोबा जी और उनके दल के साठ सदस्य प्रात:काल चार बजे नागरकायल से रवाना हो गए। सड़क के दोनों ओर लोगों की भारी भीड़ तुमुल हर्ष ध्वनि से विनोबा जी और उनके साथियों का स्वागत कर रही थी। विनोबा जी कहीं भी एक मिनट के लिए भी नहीं रुके। चलते हुए अपने हाथों में पुष्पहार स्वीकार करते जाते थे और बातें करते हुए लोगों को आह्वान करते जाते थे—"आप से और आप के बच्चों से मिल कर बड़ी खुशी हुई। जिस तरह आप अपने बच्चों से प्रेम करते हैं, उसी तरह गरीब भी अपने बच्चों से करते हैं। अपनी जमीन का एक भाग गरीबों को दे दीजिए ताकि वे उनका पालन-पोषण ढंग से कर सकें।"

*कुरुक्षेत्र, फरवरी 1958 से उद्धृत

एक ओर पश्चिमी घाट थे और दूसरी ओर अरब सागर की विस्तृत जलराशि। बीच रास्ते पर विनोबा जी का दल त्रिवेन्द्रम की ओर अग्रसर हो रहा था। इतने तड़के भी गर्मी के कारण हमें पसीना आ रहा था। पर विनोबा जी के मुंह से एक शब्द भी न निकला। दो मील, तीन मील, चार मील। मैं तंग आ गया और थकावट महसूस करने लगा। क्या विनोबा जी दिन भर एक भी शब्द मुंह से न निकालेंगे?

अचानक विनोबा जी के निकट कुछ हलचल हुई। किसी की वार्तालाप के लिए पुकार हुई। जब मुझे पुकारा गया तो मैंने अनुभव किया कि यद्यपि हृदय की धड़कन कुछ बढ़ गई है पर टांगों में नया खून दौरा कर रहा है और थकावट गायब हो गई है।

मुझसे उन्होंने बात शुरू करने के लिए कहा। मैंने जवाब दिया—"मैं तो यहां सुनने के लिए आया हूं, बात करने के लिए नहीं। आप देश में बहुत घूमे हैं इसलिए आपने चारों ओर होने वाले विकास कार्य देखे होंगे। उनके बारे में आपकी क्या राय है?" उन्होंने तुरंत जवाब दिया—"बिना बुनियाद का मकान है।"

मेरी टांगें यह सुन कर कांपने लगीं, खून का दौरा अचानक रुक गया। अगर विनोबा जी खुद आगे बात न चलाते तो हमारी बात वहीं खत्म हो जाती क्योंकि बात करने की मुझमें हिम्मत ही न रही थी।

जब योजना आयोग ने दूसरी पंचवर्षीय योजना पर मेरे विचार पूछे तो मैंने उनसे एक सवाल किया—"अपनी कुल रकम में से कितना भाग आप गरीबों पर व्यय करेंगे?" इसका जवाब देने में आयोग ने काफी समय लगा दिया। मैंने कहा—"जब इस सवाल का जवाब देने में आपको इतना समय लगा है तो इसका मतलब साफ है कि गरीबों की मदद के लिए आपने कोई विशेष कार्यक्रम नहीं बनाया।"

मैं भला इस सवाल का क्या जवाब दे सकता था? उन्हें भी मुझसे उत्तर मिलने की कोई आशा न थी। "इस योजना से बेकारों के लिए क्या होगा? भूमिहीनों को इससे क्या मिलेगा? मुझे बताया गया कि बड़ी योजनाओं पर जो रकम खर्च होगी, उससे इन वर्गों को भी थोड़ा-बहुत लाभ पहुंचेगा। ठीक है, जब भारी वर्षा होती है, तो पानी की कुछ बूंदें धरती के भीतर रेत के कणों तक पहुंच जाती हैं, पर उनके बीच में चट्टानें भी तो हो सकती हैं जो पानी को रेत के कणों तक पहुंचने से रोक दें।"

क्या विनोबा जी मेरा मजाक उड़ा रहे थे।

नहीं, वह अत्यंत गंभीरतापूर्वक यह बात कह रहे थे, ''भंगी मुक्ति के बारे में क्या हो रहा है? आप यह कब तक सहन करेंगे कि कुछ लोग दूसरों का मैला अपने सिर पर ढोते रहें? एक निर्दिष्ट अवधि में सरकार यह बंद क्यों नहीं करा देती? यह काम उतनी ही लगन से और उतने ही सुनियोजित ढंग से होना चाहिए जिस लगन से रेल की लाइन, बांध और बड़े कारखाने बनाए जाते हैं।''

मुझे मालूम हो गया कि विनोबा जी मेरा दूसरी पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत होने वाले विकास-कार्यों संबंधी प्रश्न समझ गए हैं। जहां तक सामुदायिक विकास-कार्यक्रम का संबंध है, मुझे उनके एक सहयोगी श्री वल्लभस्वामी से पता चला है कि इस बारे में उनके विचार कुछ भिन्न हैं। उनके शब्दों में कुछ समय पूर्व श्री सुरेन्द्रकुमार दे उनसे मिले थे और उनकी सामान्य राय यह थी कि सामुदायिक विकास-कार्यक्रम और ग्रामदान आंदोलन में बहुत कुछ साम्य है। दरअसल भूमि पर समुदाय (गांव पंचायत) की मिल्कीयत होने से सामुदायिक विकास कार्यों में और अधिक मदद मिलेगी।

अचानक ही दल रुक गया। विनोबा जी के दही लेने का समय हो गया था। जब हम दोबारा चले तो मेरी बारी खत्म हो चुकी थी पर मैं उनके निकट ही बना रहा और कोयमुत्तूर के एक कार्यकर्त्ता से उनका वार्तालाप सुनता रहा। ''जब पिछली बार आप मेरे गांव में आए थे तो आपने मुझे सलाह दी थी कि लोगों को सभाओं में बुलाने को आकर्षित करने के लिए मैं उन्हें रामायण और महाभारत की कहानियां सुनाया करूं।'' विनोबा जी ने स्वीकृति सूचक सिर हिलाया। ''पिछले कुछ समय से मैं यही कर रहा हूं, पर लोग नहीं आते।'' विनोबा जी ने बिना उसकी ओर देखे हुए तुरंत सलाह दी—''तब फिर भजन गाकर और नाटक आयोजित करके उन्हें आकर्षित कीजिए।'' बेचारे कार्यकर्ता महोदय भौंचक्के रह गए।

''क्यों नहीं? कई अच्छे भजन और नाटक हैं। अगर आपकी भाषा में वे नहीं हैं तो दूसरी भाषाओं से अनुवाद कर लीजिए या नए रच लीजिए।''

कार्यकर्ता महोदय ने एक और सवाल उठाया—''आपकी राय पर हमने गांव में एक पंचायती दुकान खोल दी। पर गांव वाले अब भी बनिए की दुकान पर जाना पसंद करते हैं।''

''तब आपको अपनी दुकान का इंतजाम और अच्छी तरह करना चाहिए। शहर से अच्छा माल खरीदिए और थोक में खरीदिए; फिर उसे उचित दामों पर बेचिए। तब लोग जरूर ही पंचायती दुकान से माल खरीदना पसंद करेंगे।''

पर कार्यकर्ता इतनी जल्दी हार मानने वाला नहीं था। कहने लगा—''पर हम बनिए से सस्ता माल नहीं बेच सकते; वह तोलते समय खोट करता है और इस तरह भाव सस्ते रख सकता है।''

विनोबा जी ने इसका जो हल बताया, वह तो मैं नहीं समझ सका पर आगे जो वार्तालाप चला, वह मेरे जैसे विस्तार कार्यकर्ता के लिए बहुत रोचक था।

''पर लोग तब भी बनिए के पास जाएंगे क्योंकि जो कोई भी उसकी दुकान पर जाता है, वह उसे पान-सुपारी और तम्बाकू भेंट करता है और वह भी मुफ्त ही।''

विनोबा जी ने झट जवाब दिया—''तो आप भी अपनी पंचायती दुकान में पान-सुपारी और तम्बाकू भेंट कीजिए।''

कार्यकर्ता महोदय यह बात सुन कर अपने कानों पर कठिनता से विश्वास कर सके। उसने विनोबा जी को बड़े ध्यान से देखा। उसे तेज नजर से देखते हुए विनोबा जी बोले—''अगर आप के गांव के लोग मुफ्त में पान-सुपारी चाहते हैं तो आप अपने गांव के सब लोगों की एक मीटिंग बुला सकते हैं और यह तय कर सकते हैं कि आठ आने का माल लेने पर पंचायती दुकान से एक सुपारी मुफ्त मिलेगी। पान-सुपारी, तम्बाकू और शराब जितने खराब नहीं हैं।''

''एक बार हमारे गांव में एक बनिए ने मुफ्त शराब बांटी थी। पर गांव वालों ने इसका विरोध किया और दुकानदार को वह बंद करना पड़ा।''

विनोबा जी ने प्रसन्नतापूर्वक कहा—''यही मैं भी कह रहा था। लोग काफी बुद्धिमान हैं। वे पान-सुपारी को प्रेम की निशानी के रूप में ग्रहण करते हैं। वे सोचते हैं कि भला ऐसी दुकान में जाने का क्या फायदा, जहां पान-सुपारी भी नहीं मिलती। लोगों को जीतने के लिए आपको उनसे प्रेम करना होगा और उसे ऐसे रूप में प्रदर्शित करना होगा जिसे वे समझ सकें।''

हम लगभग आठ मील का सफर तय कर चुके थे, पर मुझे जरा भी थकावट अनुभव नहीं हुई। मैं तो अपने को भाग्यवान अनुभव कर रहा था कि मैंने कुछ सीखा है। पर मुझे अभी और भी कुछ सीखना था। ''अगर मैं गांव में होटल खोलूंगा तो वहां मैं केवल दूध ही नहीं दूंगा बल्कि चाय भी साथ रखूंगा। पर अपने आप मैं केवल दूध ही पी लूंगा। इस तरह मैं पूरी तरह स्वस्थ रहूंगा। जब गांव में कोई बीमार पड़ेगा और मेरी राय मांगेगा, तो मैं उसे बताऊंगा कि मैं केवल दूध पीता हूं और पूर्णत: स्वस्थ रहता हूं। अगर तुम चाय बंद करके दूध लेना शुरू कर दो तो तुम्हारा स्वास्थ्य भी सुधर जाएगा।'' एक आधुनिक संत के मुंह से प्रदर्शन उपाय की यह व्याख्या मैं एकाग्रचित्त हो कर सुन रहा था। प्रश्न करने वाला कार्यकर्ता भी बिलकुल चुप था। उसमें व्यावहारिक बुद्धि का उदय हो रहा था।

''अभी बहुत-सी बातें करनी हैं। जनता को बहुत-सी बुराइयों और खराब आदतों से, जैसे—शराब पीना, मांस-मछली खाना, हुक्का पीना आदि से छुटकारा दिलाना है। यह सब पलक झपकते ही नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए, गुजरात में गांव वाले हुक्का बहुत पीते हैं। परंतु वे पक्के वैष्णव भी होते हैं। इसका मतलब है कि हमें इतना कम काम करना पड़ेगा। आपके गांव ने ग्रामदान किया है। यह काफी अधिक प्रगति है।.....कुछ समय के लिए आपको इसी से संतुष्ट रहना चाहिए। जनता से प्रेम करने के साथ-साथ आपको अपना धीरज भी नहीं खोना चाहिए।''

हमारी अखिल भारतीय अध्ययन यात्रा में विनोबा जी के साथ दस मील का यह सफर सबसे अधिक स्मरणीय रहा और साथ ही सबसे अधिक लाभदायक भी। ❑

सुदूर संवेदन तकनीक से सर्वेक्षण

डा. दिनेश मणि *

सुदूर संवेदन एक ऐसी तकनीक है जिससे हम वे चीजें भी देख सकते हैं जो हमसे छुपी हुई हैं। इससे किसी वस्तु या क्षेत्र के समीप गए बिना अर्थात काफी दूर से ही उसके बार में जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इस तकनीक के प्रयोग से सैन्य कार्यक्रमों के अलावा चट्टानों, मिट्टियों, स्थलाकृतियों, वनस्पतियों, जलराशियों, भूमि उपयोग, बस्तियों, मार्गों, खेत-खलिहानों आदि के सर्वेक्षण में भी मदद मिलती है। आज इस तकनीक का उपयोग भूतल संरचना, मानचित्रों, अभियांत्रिकी प्रयोजनों, पर्यावरण तथा जलवायु, मछली पकड़ने, प्रदूषण नियंत्रण संबंधी अध्ययन के साथ-साथ तेल तथा खनिज स्रोतों का पता लगाने के लिए भी किया जा रहा है।

इस शताब्दी के मध्य तक सुदूर संवेदन की जो विधि थी, उसे अब हवाई सुदूर संवेदन कहते हैं। बाद के दशकों में सुदूर संवेदन की मूलभूत रूप से एक और नवीन विधि प्रयुक्त होने लगी है। यह है—पृथ्वी के चारों ओर निरंतर घूमते मानव-निर्मित यानों या उपग्रहों पर स्थित कैमरे जैसे विशिष्ट यंत्रों से विशाल क्षेत्रों का अवलोकन तथा सूचना अधिग्रहण और भूमि पर स्थित विशेष केंद्रों को उन सूचनाओं का प्रेषण। यह उपग्रहीय सुदूर संवेदन कहलाता है जो हवाई फोटोचित्रण सुदूर संवेदन से भिन्न है। वास्तव में सुदूर संवेदन शब्द का प्रयोग तो उपग्रहीय अवलोकन चित्रण के लिए आरंभ हुआ था जिसके अंतर्गत अब हवाई चित्रण सर्वेक्षण को भी रखा जाने लगा है जो पहले केवल हवाई सर्वेक्षण कहलाता था।

वास्तव में अधिकांश सुदूर संवेदन का आधार है—सौर ऊर्जा विकिरण, जिससे विभिन्न वस्तुओं से मात्र परावर्तित और उत्सर्जित भाग को सुदूर संवेदन उपकरण ग्रहण कर लेते हैं। ऐसा सुदूर संवेदन जिसमें उपकरण अपनी ओर से कोई तत्व प्रेषित नहीं करता, वरन् केवल अपने आप आई सौर ऊर्जा को ग्रहण करता है, निष्क्रिय सुदूर संवेदन कहलाता है। इसके विपरीत कुछ उपकरण, विशेषतया सूक्ष्म तरंग उपकरण, विशिष्ट प्रकार के विकिरण को किसी निर्दिष्ट वस्तु की ओर प्रेषित करके और लौटकर आए उस विकिरण को पुनः ग्रहण करते हैं, उस विकिरण के साथ वस्तु की प्रतिक्रिया अथवा विकिरण निकलनें और वापस आने में लगे समय के आधार पर उस वस्तु की पहचान और दूरी-निर्धारण कर लिया जाता है। चूंकि इस प्रणाली में संवेदन उपकरण स्वयं विशिष्ट तरंगों को प्रेषित करता तथा वापस ग्रहण करता है, इसलिए इसे सक्रिय सुदूर संवेदन कहते हैं।

स्मरण रहे कि फ्लैश फोटोग्राफी सक्रिय सुदूर संवेदन होती है जबकि प्रकाश फोटोग्राफी निष्क्रिय सुदूर संवेदन। सक्रिय सुदूर संवेदन के अन्य उदाहरणों में 'राडार' आता है जिसमें विद्युत चुंबकीय ऊर्जा को सूक्ष्म तरंगों के रूप में उत्पन्न करने का अपना स्रोत होता है।

यद्यपि मौसम अध्ययन हेतु संवेदन उपग्रह सातवें दशक के आरंभ से ही सफलतापूर्वक छोड़े जा रहे हैं, भूमि के अवलोकन के लिए उपयोग योग्य उपग्रह अमरीका की संस्था 'नासा' द्वारा सबसे पहले 1972 में छोड़ गया जिसका नाम इरोस— (EROS-Earth Resource Observation System) था। बाद में इस शृंखला का नाम बदलकर लैंडसेट (LANDSAT-Land SpaceApplication Technology) शृंखला कर दिया गया। तत्पश्चात सन् 1975, 1976, 1982 तथा 1984 में क्रमश लैंडसेट 2, 3, 4 और 5 छोड़े गए। इस समय लैंडसेट 4 और 5 एक साथ कार्यरत हैं। सन् 1986 के आरंभ में फ्रांस ने स्पाट (SPOT) नामक उपग्रह छोड़ा है। जापान और भारत शीघ्र ही अपना भू-अवलोकन उपग्रह छोड़ने की योजना पर कार्य कर रहे हैं :

विभिन्न क्षेत्रों में सुदूर संवेदन प्रयोग के उदाहरण इस प्रकार हैं—

कृषि तथा वन्य विज्ञान

- पौधों की बीमारियों का पता लगाना,
- प्राकृतिक वनस्पति, फसल एवं नई संपत्ति की सूची बनाना,
- मिट्टी में नमी की मात्रा का पता लगाना,

* प्राध्यापक, रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

- कृषि-योग्य और कृषि-अयोग्य भूमि का अध्ययन करना,
- फसल की पैदावार की भविष्यवाणी के लिए पौधों की वृद्धि तथा ओज का मूल्यांकन करना,
- भूमि के प्रकारों और गुणों का अध्ययन करना।

जल विज्ञान

- हिमखंड, हिम आच्छादन, बर्फ का संचय तथा उसमें परिवर्तन का अध्ययन करना,
- बाढ़ नियंत्रण तथा जल प्रबंध,
- सतह-जल की तालिका बनाना,
- नदी की धाराओं और समुद्र के किनारों की ओर भूमिगत पानी के रिसाव का अध्ययन,
- पानी को क्षति पहुंचाने वाले स्रोतों का पता लगाना,
- समुद्री सतह का तापमान और

  अ : मछलियों के स्रोतों की स्थिति का अनुमान लगाना,

  ब : समुद्री धाराओं का अनुमान लगाना,

  स : वाष्पीकरण का अनुमान लगाना,

  द : चक्रवात बनने की प्रारंभिक स्थिति की भविष्यवाणी करना।

समुद्र विज्ञान

- जल रंग परिवर्तन और वहां के :

  अ : समुद्र तटों की जलगत स्थलाकृति तथा जल प्रदूषण का अध्ययन, जैव-मात्रा का अनुमान लगाना,

  ब : तरंग अपवर्तन और पेंदी की स्थलाकृति का अध्ययन करना,

- पेट्रोलियम भंडारों तथा मत्स्य उदगमों का पता लगाना,
- क्लोरोफ़िल की संकेंद्रणता (शैवाल, प्लवक) का अध्ययन करना,
- खनिजों का मानचित्रण करना।

भू-विज्ञान

- मिट्टी तथा चट्टानों के प्रकार और छिपे हुए खनिज पदार्थों के लिए अनुकूल अवस्थाओं का अध्ययन करना,
- तेल स्रोत चट्टानों से संबंधित आयोडीन गैस का पता लगाना,
- भू-तापीय मानचित्रण करना,
- भूमि में खनिज पदार्थों की उपस्थिति से प्रभावित वनस्पतियों का पता लगाना।

मानचित्र कला तथा भू-विज्ञान

- स्थलाकृतिक मानचित्रण करना,
- शहरी क्षेत्रों तथा उनसे संबंधित विकास के क्षेत्रों का अध्ययन करना,
- नदियों, झीलों इत्यादि का मानचित्रण करना,
- नमी वाली जमीन (दलदल) का संदेखण।

पर्यावरणीय नियंत्रण

- वायुमंडलीय प्रदूषण का मापन करना,
- समुद्री जल तथा प्रदूषण का मापन करना,
- जलीय पारिस्थितिक जीवन तंत्र का अध्ययन करना,
- स्थलीय पारिस्थितिक जीवनतंत्र का अध्ययन करना।

सुदूर संवेदन की नई विधियों को उपयोग करने में नेशनल रिमोट सेंसिंग एजेंसी ने काफी योगदान किया है, यह संस्था देश के प्राकृतिक संसाधनों के सर्वेक्षण तथा प्रबंधन में सहायता के लिए आधुनिक विधियों का इस्तेमाल कर रही है।

इस प्रकार सार रूप में यह कहा जा सकता है कि हमारा देश अब सुदूर संवेदन की तकनीक से लाभ उठाने के लिए पूरी तरह तैयार है तथा निकट भविष्य में हम अपने प्राकृतिक संसाधनों का और बेहतर उपयोग करने में सफल होंगे। ❑

लेखकों से

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, कविता, संस्मरण, लघुकथा आदि रचनाएं टाइप कराकर दो प्रतियों में भेजिए। रचनाओं के साथ मौलिकता का प्रमाणपत्र संलग्न होना चाहिए। जिन रचनाओं के साथ ऐसा प्रमाणपत्र संलग्न नहीं होगा, उन्हें स्वीकार नहीं किया जा सकेगा। अस्वीकृत रचना लौटाने के लिए कृपया डाक टिकट लगा और अपना पता लिखा लिफाफा लगाना न भूलें। सभी रचनाएं संपादक, 'कुरुक्षेत्र', ग्रामीण क्षेत्र और रोजगार मंत्रालय, कृषि भवन, नई दिल्ली-110001 के पते पर भेजें।

—सम्पादक

ग्रामीण विकास में गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका

डा. अनिल दत्त मिश्रा *

विकसित और विकासशील देशों में काफी समय से ग्रामीण विकास को प्रोत्साहित किया जाता रहा है। भारत में ग्रामीण विकास की ओर ध्यान आजादी के बाद से दिया गया। परंतु छठी पंचवर्षीय योजना के बाद इस पर विशेष रूप से बल दिया गया। इसके लिए केंद्र सरकार ने ग्रामीण विकास के लिए कई तरीकों को अपनाया।

ग्रामीण विकास का मुख्य लक्ष्य ग्रामीण लोगों के जीवन को बेहतर बनाना है। इसके लिए उत्पादन बढ़ाना, सामाजिक और आर्थिक समानता लाना, संतुलित विकास को बढ़ावा देना, प्राकृतिक वातावरण को सुरक्षित रखना और सामुदायिक भागीदारी को सुनिश्चित करना शामिल है। ये सारे लक्ष्य अति आवश्यक हैं और इनकी प्राप्ति नीति-निर्धारकों और क्रियान्वयन एजेंसी के लिए चुनौती हैं। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर आठवीं पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण समुदाय की भागीदारी को बढ़ाने तथा कम लागत पर विकास योजनाओं को चलाने के लिए विशेष व्यवस्था की गई।

हमारे ग्रामीण विकास का अनुभव बताता है कि ग्रामीण लोग अपने आपको संगठित करने में बाहरी सहायता की आवश्यकता महसूस करते हैं। कुछ लोगों का मानना है कि सरकारी लोग इस प्रकार की भूमिका को अच्छे और कारगर ढंग से निभा सकते हैं। लेकिन अनुभव यह बताता है कि यह सही नहीं है। अगर सरकारी कर्मचारी लोगों को संगठित करेंगे तो संपूर्ण वातावरण अवास्तविक दिखाई देने लगेगा। लोगों को संगठित करने का कार्य गैर-सरकारी संगठन प्रभावी ढंग से कर सकते हैं। कारण यह है कि गैर-सरकारी संगठन स्थानीय समुदाय तथा प्रशासन के बीच की दूरी को कम कर सकते हैं। अधिकांशत: विकासशील देशों में लाल-फीताशाही तथा राजनैतिक हस्तक्षेप सरकारी सेवाओं को आम आदमी तक नहीं पहुंचने देते। ऐसी स्थिति में स्वयंसेवी संगठनों के हस्तक्षेप स्थानीय प्रशासन के उत्तरदायित्व को सुनिश्चित करके ग्रामीण समुदायों की आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं को पूरा करते हैं।

इस संबंध में हमारे सामने कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न आते हैं, जैसे—विकेंद्रीकरण। ग्रामीणों की स्थिति को सुधारने के लक्ष्य को पूरा करने में गैर-सरकारी संगठन कहां तक अपनी भूमिका अदा कर सकते हैं? अगर सरकार अपने दायित्वों को नहीं निभा पा रही है तो क्या गैर-सरकारी संगठन विकल्प के रूप में ग्रामीण विकास का दायित्व निभाने में पूर्ण सक्षम हैं? दूसरी तरफ ग्रामीण विकास में इन संस्थाओं की क्या भूमिका होगी?

सरकारी तंत्र की कार्यों में आई उदासीनता के कारण गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका बढ़ गई है। कारण यह है कि सरकारी ढांचा समन्वित विकास के लिए तैयार नहीं है, खासकर कृषि, ऊर्जा, पर्यावरण, जल-संसाधन, समानता, सामाजिक न्याय जैसे क्षेत्रों में। अत: समन्वित विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए स्वयंसेवी संगठनों की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है क्योंकि ये संस्थाएं जमीन से जुड़कर काम करती हैं। साथ ही स्थानीय आवश्यकताओं और जरूरतों के आधार पर समानता और सामाजिक न्याय के सिद्धांतों को स्वीकार करती हैं। कुछ लोग यह मानते हैं कि सरकारी हस्तक्षेप सहकारी एवं मजदूर संघों के लिए गलत है।

इस संदर्भ में, पूर्व प्रधानमंत्री श्री नरसिंहा राव का वह वक्तव्य विचारणीय है जिसे उन्होंने 7 मार्च 1994 को नई दिल्ली के विज्ञान भवन में गैर-सरकारी संगठनों के सम्मेलन में दिया था कि "हम लोगों को यह याद रखना होगा कि लोग सभी क्रिया-कलापों के केंद्र हैं। हमें हमेशा यह ध्यान में रखना चाहिए कि हमें क्या करना है। इसलिए जब मैं विकास में भागीदारी की बात करता हूं तो मेरे मन में यह बात आती है कि लोग अपनी सहायता स्वयं करें। दूसरे शब्दों में, हमें अपने देश को ऐसी स्थिति में लाना होगा जहां अपनी समस्या का निवारण बिना किसी बाहरी सहायता के स्वयं कर सकें। लोग न केवल अपने ऊपर शासन करने वाले को बदलें, बल्कि अपना शासन स्वयं करें। यही व्यक्ति से संबंधित विकास है। इसलिए अगर वे गैर-सरकारी संगठनों के कोई विशेष क्षेत्र को लेते हैं तो इसका मतलब यह नहीं है कि वे हमेशा वही काम करते रहेंगे। एक ऐसा समय आएगा जब लोग पूर्णरूपेण स्वयं विकसित हो जाएंगे और अपनी समस्याओं को स्वयं हल कर लेंगे। दूसरे शब्दों में, कार्य पूर्ण होने पर गैर-सरकारी संगठनों को वहां से अपने कार्यों को समेट कर दूसरे स्थानों पर ले जाना होगा, जहां उनकी जरूरत है।"

सामाजिक संघटन लोगों को योग्य और समर्थ बना रहा है क्योंकि इसमें समाज विकास की योजनाएं बनाई गई हैं। उनका समुचित लाभ उन्हें मिल सके, ऐसा प्रयास किया जा रहा है। इस प्रकार के समाज को संघटित करने का कार्य नौकरशाही द्वारा संभव नहीं है। लोग विकास के कार्य में कैसे

* व्याख्याता, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनू, राजस्थान

प्रभावी ढंग से सम्मिलित हों तथा उसका समुचित लाभ उठा सकें—इसके लिए लोगों को तैयार करने का कार्य गैर-सरकारी संगठनों द्वारा किया जा सकता है। गैर-सरकारी संगठन सामाजिक परिवर्तन में प्रेरक का काम कर सकते हैं। शायद, सहायता प्रदान करने का काम पंचायतों का होगा जिन्हें हाल ही में संवैधानिक दर्जा दिया गया है।

गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका और दायित्व

आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97) में ग्रामीण विकास में स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका पर बल दिया गया। योजना प्रलेख में यह वर्णन है कि 'संपूर्ण देश में गैर-सरकारी संगठनों का एक तंत्र बनाया जाएगा। इस कार्य को आगे बढ़ाने के लिए, योजना आयोग ने तीन—सृष्टि, प्रतिकृति, गुणन एवं परामर्श विकसित करने की योजनाएं बनाई हैं। यह प्रयास किया जाएगा कि एक तंत्र बनाया जाए जो गैर-सरकारी संगठनों के कार्यों को संपादित करने में मदद करेगा।'

ग्रामीण विकास की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि विभिन्न संगठनों में लोगों की सक्रिय भूमिका कितनी रही। विकास के कार्यों में स्वयंसेवी संगठनों द्वारा लोगों की भागीदारी सुनिश्चित कर कार्य किया जाता है। ये संगठन सरकारी प्रयासों तथा सामाजिक विकास के कार्यों को ग्रामीण विकास के साथ जोड़कर करते हैं।

स्वयंसेवी संस्थाएं एक प्रहरी की तरह कार्य करती हैं। ये महिलाओं के हितों की रक्षा और महिला सरपंचों का मार्गदर्शन करती हैं। उनमें जागरूकता और आत्म-विश्वास जगाती हैं। ये पुरुषों को भी उनकी आर्थिक स्थिति को सुधारने के प्रति जागरूक करती हैं क्योंकि गरीबी और आर्थिक निर्भरता ही उनके पिछड़ेपन का मूल कारण हैं। लालफीताशाही और राजनैतिक हस्तक्षेप सरकारी सुविधाओं को गरीब लोगों तक नहीं पहुंचने देते। वहीं गैर-सरकारी संगठन जो ग्रामीण गरीबों का प्रतिनिधित्व करते हैं, स्थानीय प्रशासन को लोगों की आवश्यकताओं और अपेक्षाओं के अनुरूप अपना दायित्व पूरा करने पर जोर देते हैं।

गैर-सरकारी संगठन भूमिहीन मजदूरों को उनके अधिकारों की प्राप्ति के लिए उनके अंदर आत्म-विश्वास पैदा कर सकते हैं। स्वयंसेवी संस्थाओं ने ग्रामीण विकास योजनाओं के लिए विभिन्न क्षेत्रों में कार्य किए हैं। उनका कार्यक्रम काफी व्यापक है जैसे—सरकार की गरीबी उन्मूलन योजनाएं, ग्रामीण युवाओं के लिए प्रशिक्षण, ग्रामीणों के लिए मकान का प्रबंध, बंजर भूमि विकास, स्वास्थ्य सेवा, परिवार कल्याण, शिशु कल्याण तथा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लोगों के लिए योजनाएं। गैर-सरकारी संगठन ग्रामीण लोगों की आवश्यकताएं तथा उनके अधिकारों की रक्षा कर ग्रामीण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। वे स्थानीय सरकार तथा स्थानीय प्रशासन पर स्वैच्छिक नियंत्रण कर सकते हैं। गैर-सरकारी संस्थाएं सरकारी तंत्र को असली लक्ष्य समुदाय की पहचान कराकर, ज्यादा प्रभावी बना सकने में मदद कर सकती हैं।

स्वयंसेवी संस्थाएं, गरीबों तक सरकारी कार्यक्रमों के लाभ को पहुंचाने में एक उत्प्रेरक का काम कर सकती हैं। लोग सही निर्णय ले सकें, इसके लिए उन्हें तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। वास्तव में, सहभागी विकास की वह प्रक्रिया है, जिसमें समुदाय अपनी समस्याओं का पता लगाकर, सामाजिक-आर्थिक विकास के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अपनी कार्य-योजना समय-समय पर बनाए।

यह कहा गया है कि स्वयंसेवी संस्थाएं स्रष्टा, पालक एवं संरक्षक के रूप में ग्रामीण क्षेत्र में कार्य करती हैं। ये संस्थाएं लोगों में जागरूकता पैदा करती हैं, जीवन-यापन के लिए विभिन्न प्रकार के अवसर उत्पन्न करती हैं। लोगों की सहायता से उनके पर्यावरण के लिए क्या जरूरी है, उन वस्तुओं का संरक्षण करने में उपयुक्त तकनीक तथा वैज्ञानिक मान्यताओं के अनुसार चलने में और अंधविश्वासों तथा रूढ़ियों को समाप्त करने में अहम भूमिका निभाती हैं। कुछ सुझावों पर ध्यान देकर स्वयंसेवी संस्थाओं की भूमिका को सार्थक बनाया जा सकता है जैसे विभिन्न एजेंसियों के बीच समन्वय कायम करना, नौकरशाही के रुख को प्रोत्साहक बनाना, समुचित कोष उपलब्ध कराना, सरकारी विभागों के साथ संपर्क कायम रखना, वैज्ञानिक संस्थाओं से संपर्क बनाए रखना चाहिए, जिससे ग्रामीण विकास के क्षेत्र में जो नए-नए विकास हुए हैं, उसका ज्ञान उन्हें मिल सके, नई तकनीकी तथा नई प्रविधियों का प्रयोग करने के लिए लोगों को प्रोत्साहित करना।

स्वयंसेवी संस्थाएं ग्रामीण विकास में अहम् भूमिका निभा सकती हैं, क्योंकि वे ग्रामीण लोगों के दिल और दिमाग के नजदीक रहती हैं। स्वयंसेवी संस्थाओं के मूल में जो लोग हैं, वे समुदाय की आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं को समझते हैं। भारत जैसे देश में स्वयंसेवी संस्थाएं केवल प्रारंभिक कार्यों के लिए प्रेरक एवं शांति का कार्य कर सकती हैं। स्वयंसेवी संस्थाएं विकास के मुद्दे पर सरकार से विचार-विमर्श कर विकास में सहभागिता की भूमिका निभा सकती हैं।

एक तरफ गैर-सरकारी संगठनों को अपने कार्यों का सिंहावलोकन करने की आवश्यकता है तो दूसरी तरफ सरकारी अधिकारी सतत यह मानते हैं कि विकास का अंतिम दायित्व उन पर है तथा इस उद्देश्य के लिए गैर-सरकारी संस्थाएं केवल सरकार की बाह्य एजेंसी की भूमिका निभाती हैं। गैर-सरकारी संगठन न केवल गरीबों के हितों की रक्षा करते हैं बल्कि वे ऐसे कार्यक्रम प्रारंभ कराने में सक्षम भी हैं। वे गरीब लोगों की संगठनात्मक शक्ति बढ़ाने के साथ ही ऐसा वातावरण बना सकती हैं कि योजनाओं की सम्मति गरीबों से ली जाए। उन्हें लोगों की संस्थाएं बनानी चाहिए जो ग्रामीण स्तर से प्रारंभ होकर ऊपर की ओर जाएं। साथ ही साथ स्थानीय संस्थाओं का ढांचा संघात्मक हो जिससे स्थानी समुदायों को स्थानीय स्तर पर अधिकार दिए जा सकें तथा स्थानीय नीति-निर्धारण तथा योजना बनाने में उनकी भागीदारी सुनिश्चित हो सके।

स्वयंसेवी संस्थाएं सतत नवीनता और प्रयोगात्मक प्रविधि के द्वारा उन क्षेत्रों तक अपने कार्यों को पहुंचाएं, जहां सरकार अभी तक कार्य करने को तैयार नहीं है। जब तक सरकार देश के सभी क्षेत्रों में कार्य पूरा नहीं कर पाती, स्वयंसेवी संस्थाएं प्रमुख भूमिका अदा करेंगी। सरकार को स्वयंसेवी संस्थाओं का स्वागत तथा उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए जिससे वे ग्रामीण

क्षेत्रों के आर्थिक तथा भौतिक विकास का दायित्व अपने ऊपर ले सकें। यहां सरकार शब्द का अर्थ जिला, प्रखंड और ग्रामीण स्तर से है। यह सामान्योक्ति है कि कोई सरकार समाज का अकेले निर्माण नहीं कर सकती। सरकार विकास के बाहरी दायरे का निर्माण करती है और स्वयंसेवी संस्थाएं उस कार्य को पूर्ण रूप दे सकती हैं।

स्थानीय सरकारी कार्यालय गैर-सरकारी संस्थाओं के लिए एक महत्वपूर्ण भंडारक का कार्य करते हैं। यह सत्य है कि जहां ग्रामीण क्षेत्रों में गैर-सरकारी संस्थाएं कार्य कर रही हैं, वहां सरकारी पदाधिकारियों के पास यह फैसला करने का अधिकार है कि इस क्षेत्र में क्या किया जा सकता है और क्या नहीं किया जा सकता। गैर-सरकारी संस्थाएं जब कभी-कभी प्रतिरोधी रुख अपनाती हैं, तब कुछ अधिकारियों द्वारा उन संस्थाओं को रोका जा सकता है। यह माना जाता है कि उनका काम केवल सरकार की योजनाओं को लागू करने में एजेंट मात्र बनकर रह जाने का है। सरकार में नीति बनाने वाले लोगों का यह मत है कि विकास योजनाओं में लोगों की भागीदारी अभी तक कम है, जबकि उनकी सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि समुदाय की भागीदारी कितनी है। इसलिए गैर-सरकारी संस्थाएं इस कार्य को अपने जिम्मे लें।

अवलोकन

अभी तक इस पर जोर दिया गया है कि गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। गैर-सरकारी संगठन जैसे—ऐस्सेफा (एसोसिएशन फार सर्वा फार्मस), एक गांधीवादी संगठन है जो इसका ज्वलंत उदाहरण है। यह एक ऐसा संगठन है जहां लोगों ने अपनी सामर्थ्य को अपने से ही प्राप्त किया है। उनका काम सामुदायिक स्वास्थ्य, पौष्टिक आहार, शिक्षा, पढ़ना-लिखना, आर्थिक विकास तथा गरीबी उन्मूलन के कार्यों को आगे बढ़ाना है। ऐस्सेफा को गांधी और विनोबा के पद-चिन्हों पर स्थापित किया गया है। वे चाहते थे कि सही शक्ति लोगों के पास हो, न कि सरकार तथा नौकरशाहों के हाथों में।

गैर-सरकारी संगठनों का एक महत्वपूर्ण कार्य मानव संसाधन परियोजनाओं तथा लोगों के हितों के लिए संसाधन जुटाना है। सहकारी समितियां, युवा क्लब, ग्राम-विकास समितियां और ग्राम कल्याण संगठनों के द्वारा स्थानीय संसाधनों को संघटित कर ग्रामीण वातावरण को सुधारने तथा परिवर्तन करने में गैर-सरकारी संगठन अहम् भूमिका निभा सकते हैं। स्वयंसेवी संगठनों की विविधता सरकारी एजेंसियों के विभिन्न कार्यों में सहायक सिद्ध होगी।

जहां तक पंचायती राज संस्थाओं की सफलता का प्रश्न है, यह माना गया है कि इनकी सफलता ज्यादातर स्थानीय स्तर पर गैर-सरकारी संगठनों की सक्रिय भागीदारी से संभव है। अपने अनुभव तथा प्रवीणता के कारण वे निपुण और प्रेरक की भूमिका अदा कर सकते हैं। पंचायत स्तर पर गैर-सरकारी संस्थाएं, शिक्षक, प्रशिक्षक, प्रोत्साहक तथा सहायक की भूमिका निभाने का काम कर सकती हैं। वह सारे काम इस प्रकार से कर सकती हैं : (क) पंचायती राज संस्थाओं के स्वतंत्र तथा निष्पक्ष चुनाव कराने में सहायता देना, (ख) पंचायती राज संस्थाओं के नव-निर्वाचित प्रतिनिधियों को विकास योजनाओं की जानकारी देना, (ग) पंचायत के विकासोन्मुखी कार्यों में पूरा-पूरा सहयोग देना, (घ) प्रशिक्षण, संस्थापन तथा व्यवसायिकी में सहायता करना, (च) संपूर्ण देश की पंचायतों के साथ विचार-विमर्श तथा उनके क्रिया-कलापों की जानकारी प्राप्त करना।

गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका और उसकी उपयोगिता की चर्चा करते समय कपार्ट की भूमिका का उल्लेख जरूरी है। कपार्ट एक ऐसी संस्था है जिसमें ग्रामीण क्षेत्र और रोजगार मंत्रालय के अधिकारी, प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्त्ता तथा स्वयंसेवी संस्थाओं के प्रतिनिधि शामिल हैं। ये विभिन्न कार्यक्रमों के लिए दिशा-निर्देश तैयार करती है।

हमारे देश में एक लाख से ज्यादा गैर-सरकारी संगठन हैं। कपार्ट लगभग 5,500 गैर-सरकारी संगठनों की चुनाव संरचना, उनके कार्य करने की संस्कृति तथा उनके कार्यों के आधार पर चुनाव करे। यह संख्या देश की प्रखंडों की संख्या के बराबर हो। यह आवश्यक है कि ग्रामीण विकास तथा गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम के लिए जो धनराशि केंद्रीय मंत्रालय द्वारा निर्धारित की गई है, उसका संचालन कपार्ट द्वारा किया जाना चाहिए। जो गैर-सरकारी संगठन अपना कार्य सुचारू ढंग से कर रहे हैं, उन्हें एक से ज्यादा प्रखंड दिये जा सकते हैं।

सुधार के लिए सुझाव

कानून में सुधार की जरूरत : विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा स्थानीय संस्थाओं के लिए जो कानून बनाए गए, उसमें काफी कमियां हैं। उदाहरण के लिए-अधिकांश मामलों में ग्राम पंचायत की संरचना के बारे में कोई निश्चित आकार-प्रकार निर्धारित नहीं किया गया है। साथ ही कुछ मामलों में ग्राम सभा की बैठक कब हो तथा उसका संचालन किस प्रकार हो, इसकी कोई निश्चित व्यवस्था नहीं की गई है। कुछ मामलों में नौकरशाही को स्थानीय स्तर पर पंचायती राज संस्थाओं के चुने गए प्रतिनिधियों से ज्यादा अधिकार प्राप्त हैं। गैर-सरकारी संगठन अपनी विशेषज्ञता तथा ज्ञान द्वारा इस प्रकार की समस्याओं को सामने लाकर राज्य सरकार पर कानून/नियमों में संशोधन करने के लिए दबाव डाल सकते हैं।

योजना बनाने में सहायता : योजना एक सार्वजनिक प्रक्रिया है। गैर-सरकारी संगठन पंचायती राज संस्थाओं की ग्रामीण विकास की योजनाएं बनाने में मदद कर सकते हैं। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम में ग्राम सभा द्वारा बनाई गई योजनाओं तथा बजट को कानूनी मान्यता मिल गई है। इस कार्य में गैर-सरकारी संगठन ग्राम सभा को काफी हद तक मदद कर सकते हैं।

जागरूकता पैदा करना : केवल कानून और नियमों द्वारा सामाजिक परिवर्तन नहीं लाया जा सकता। इसमें कोई संदेह नहीं है कि नए पंचायती राज कानून में महिलाओं के लिए एक-तिहाई सीटें और अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के लिए उनकी जनसंख्या के अनुसार सीटें आरक्षित की गई हैं। परंतु इस बात की क्या गारंटी है कि उनकी भूमिका रबड़ स्टांप से बढ़कर होगी। इस स्थिति को बदलने के लिए गैर-सरकारी संगठन, इन वर्ग के लोगों में जागृति ला सकते हैं। इसके अलावा ग्रामीण समुदाय में

जागरूकता पैदा करनी चाहिए जिससे वे प्रभावी ढंग से विकास प्रक्रिया में भाग ले सके।

निष्कर्ष

अपनी भूमिका को प्रभावी ढंग से अदा करने के लिए ज्यादातर गैर-सरकारी संगठनों को समुचित प्रशिक्षण तथा क्षमता बढ़ाने की जरूरत है। इसके अलावा विभिन्न प्रकार के गैर-सरकारी संगठनों के बीच सहयोग तथा सहभागिता बढ़ाना भी आवश्यक है ताकि एक-दूसरे के अनुभव से लाभ उठा सकें। लोग यह महसूस करने लगे हैं कि पंचायती राज को संवैधानिक मान्यता मिलने के कारण गैर-सरकारी संगठनों तथा पंचायती राज संस्थाओं के बीच टकराव हो सकता है। लेकिन हमारे विचार से यह धारणा गलत है। वास्तविकता यह है कि पंचायती राज संस्थाओं को गैर-सरकारी संगठनों की ज्यादा जरूरत होगी और आने वाले समय में यह जरूरत और भी बढ़ सकती है। इस बात की भी जरूरत है कि पंचायती राज संस्थाएं तथा गैर-सरकारी संस्थाएं अपने काम में पारदर्शिता एवं दायित्व की भावना लाएं। इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि गैर-सरकारी संगठनों के आदर्शमूलक कार्य ग्राम पंचायतों तथा पंचायती राज निकायों को मजबूत बनाने में सहायक हों। गैर-सरकारी संगठन ग्रामीण जनता को प्रशिक्षित करके पंचायती राज को सुचारू ढंग से चलाने में मदद कर सकते हैं।

निष्कर्ष में हम यह कह सकते हैं कि गैर-सरकारी संगठनों के समक्ष स्पष्ट और बहुत बड़ी चुनौती है। उनके समक्ष यह अहम् प्रश्न है कि वे किस प्रकार ऐसा माहौल पैदा करते हैं कि सरकार विभिन्न प्रकार की नीतियों का निर्धारण और कार्यक्रम का कार्यान्वयन गरीबों, खासकर ग्रामीण गरीबों के लाभ के लिए करें। साथ ही, ये संगठन स्थानीय संस्थाओं के साथ मिल कर लोगों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। आने वाला समय ग्रामीण विकास में पंचायती राज संस्थाओं तथा गैर-सरकारी संगठनों के सम्मिलित प्रयास का समय है। ❑

कुरुक्षेत्र की विज्ञापन की दरें

	सामान्य दर			चार विज्ञापनों के अनुबंध की दर		
	अंग्रेजी		हिन्दी	अंग्रेजी		हिन्दी
	रंगीन	श्वेत/श्याम	श्वेत/श्याम	रंगीन	श्वेत/श्याम	श्वेत/श्याम
	रुपये	रुपये	रुपये	रुपये	रुपये	रुपये
पूरा पृष्ठ	—	2,500	1,600	—	2,300	1,300
आधा पृष्ठ	—	1,500	900	—	1,300	700
पिछला आवरण पृष्ठ	9,400	5,000	2,300	8,800	4,800	1,900
अन्दर का आवरण पृष्ठ	6,300	3,400	2,100	5,600	3,100	1,800

विज्ञापन संबंधी अन्य जानकारी

पूरा आकार	:	21 से.मी. × 28 से.मी.
मुद्रित क्षेत्र	:	17 से.मी. × 24 से.मी.
मुद्रण प्रणाली	:	आफसेट प्रेस
स्वीकार्य विज्ञापन सामग्री	:	केवल आर्टवर्क/आर्टपुल/पोजिटिव
विज्ञापन स्वीकार करने की अंतिम तिथि	:	60 दिन पहले
डिमांड ड्राफ्ट देय हो	:	निदेशक प्रकाशन विभाग के नाम नई दिल्ली में देय
पता जिस पर विज्ञापन भेजा जाए	:	श्री के.एस. जगन्नाथ राव, विज्ञापन एवं प्रसार संख्या प्रबंधक प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक 4, लेवल 7, आर.के. पुरम, नई दिल्ली-110066 टेलीफोन : 6105590 (कार्यालय) 6116185 (निवास) फैक्स : 6175516, 6193012, 3386879

सावधान! थकान खतरनाक बीमारी का लक्षण हो सकता है

डा. राकेश सिंह*

आज के व्यस्त संसार में थकान हर मनुष्य की समस्या है। प्रत्येक मानव चाहे वह बालक हो, युवा हो अथवा वृद्ध, कभी न कभी थकान का अनुभव अवश्य करता है। इस थकान का अनुभव मनुष्य तब करता है जब वह कोई कार्य अपनी कार्य-क्षमता से अधिक करता है। इसका कारण यह है कि साधारणतया किसी काम को करने के लिए मांसपेशियों के एक समूह को मिल कर काम करना पड़ता है और इसके लिए उन मांसपेशियों को उत्तेजित करने की आवश्यकता होती है। यदि यह मांसपेशियां लगातार या बार-बार उत्तेजित की जाएं तो धीरे-धीरे इनकी कार्य-क्षमता कम होती जाती है और अंत में यह स्थिति आ जाती है कि वे काम करना बंद कर देती हैं। इस अवस्था को 'थकान' कहा जाता है। इस थकान के कई कारण हैं, जैसे—

(1) मांसपेशियों के अंदर की ऊर्जा का समाप्त हो जाना।

(2) मांसपेशियों के अंदर लगातार हो रही जीव रासायनिक क्रिया द्वारा उत्पन्न दूषित पदार्थों का संग्रह हो जाना जिनमें लैक्टिक एसिड, कार्बन डाइ-आक्साइड तथा कीटोन बाडीज़ मुख्य हैं।

(3) एसिटाइल कोलीन नामक जीव रासायनिक पदार्थ का बनना कम हो जाना, जो मांसपेशियों को उत्तेजित करता है ताकि वे काम कर सकें।

थकान कई बीमारियों का लक्षण

इस प्रकार उत्पन्न थकान कोई बीमारी नहीं है बल्कि यह एक प्रकार से शरीर की प्रतिरोधकता का काम करती हुई उसे अपनी कार्य-क्षमता से ज्यादा काम करने से रोकती है जो मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। इसके विपरीत यही थकान शरीर की अनेकानेक बीमारियों का मुख्य लक्षण भी है। 'शरीर में खून की कमी' अथवा 'एनीमिया' में मनुष्य निरंतर बढ़ रही थकान और कमजोरी का अनुभव करता है। इस बीमारी में शरीर में उपस्थित लाल रक्त कणों में हिमोग्लोबिन की मात्रा में कमी हो जाती है। एक सामान्य पुरुष में हिमोग्लोबिन की मात्रा साधारणत: 13 से 18 ग्राम प्रतिशत तक होती है जबकि स्त्री में यह मात्रा 11.5 से 16.5 ग्राम प्रतिशत तक होती है। शरीर में खून की कमी के कई कारण हैं। सबसे महत्वपूर्ण कारण शरीर में लौह पदार्थ की कमी होना है। खून में यह लौह पदार्थ हिमोग्लोबिन, मायोग्लोबिन एवं अन्य अनेक प्रकार के एन्जाइम्स के रूप में उपस्थित होता है। इन सभी के द्वारा लौह पदार्थ का कार्य आक्सीजन को फेफड़ों से लेकर शरीर के विभिन्न भागों तक पहुंचाना है ताकि शरीर की प्रत्येक क्रिया सुचारू रूप से चल सके।

एनीमिया से बचाव के उपाय

यह लौह पदार्थ हमें, हमारे भोजन द्वारा प्राप्त होता है जिसमें मांस, मछली, अंडे, दालें, हरी और पत्तेदार सब्जियां तथा सूखे मेवे आदि में यह ज्यादा मात्रा में पाया जाता है। शरीर में साधारणतया लौह पदार्थ की कमी संतुलित भोजन न खाने के कारण होती है। लौह पदार्थ की कमी के कारण पैदा हुई खून की कमी को आयरन डैफीशिएंसी एनीमिया कहा जाता है।

महिलाओं में यह रोग पुरुषों के मुकाबले काफी अधिक मात्रा में पाया जाता है, खास तौर पर दूध पिलाती माताओं में यह मात्रा 40 प्रतिशत तक देखी गई है। बढ़ते हुए बच्चे तथा क्रिमी संक्रमण के कारण भी मानव इस रोग का शिकार हो सकता है। इस रोग में थकावट के अतिरिक्त अन्य कई लक्षण भी होते हैं जैसे सांस लेने में कठिनाई का अनुभव होना, दिल तेजी से धड़कना आदि। यदि खून की कमी की मात्रा ज्यादा हो तो रोगी को सिरदर्द, चक्कर आना, घबराहट एवं बेहोशी जैसी शिकायतें भी हो सकती हैं।

इस रोग से बचने के लिए संतुलित और लौह पदार्थ से युक्त भोजन का सेवन अत्यंत आवश्यक है। यदि किसी मनुष्य में उपरोक्त लक्षण हों तो उसे अपने खून की जांच करानी चाहिए तथा डाक्टर की सलाह अनुसार आयरन-फोलिक एसिड की गोलियों का नियमित सेवन करना चाहिए। ये गोलियां सभी सरकारी अस्पतालों, औषधालयों और स्वास्थ्य केंद्रों पर मुफ्त मिलती हैं।

*वरिष्ठ चिकित्साधिकारी एस्कार्ट्स हास्पिटल एंड रिसर्च सेंटर, फरीदाबाद

लौह पदार्थों की कमी के कारण उत्पन्न खून की कमी के अतिरिक्त शरीर में खून की कमी के अन्य कारण हैं— शरीर से खून का बह जाना। यह रक्तस्राव या तो यकायक हो सकता है जैसे दुर्घटना या शल्य क्रिया के समय अथवा धीरे-धीरे जैसे बवासीर रोग या पेट में अल्सर आदि रोग के कारण।

मनुष्य के खून के लाल रक्त कण जो साधारणतया गोलाकार होते हैं, कई बार इनकी बनावट में दोष आ जाने के कारण, ये स्वयं नष्ट होने लगते हैं तथा इससे मनुष्य को खून की कमी हो जाती है। इस प्रकार उत्पन्न खून की कमी को हिमोलिटिक एनीमिया कहा जाता है।

थकान, क्षय रोग और कैंसर का लक्षण

श्वास क्रिया से संबंधित अनेक बीमारियों में भी थकान इसके मुख्य लक्षणों में से एक है। इन बीमारियों में क्षय रोग सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यह एक संक्रामक रोग है और उन लोगों में ज्यादा पाया जाता है जिनका रहन-सहन स्वस्थ नहीं है अर्थात जो ऐसे घरों में निवास कर रहे हैं जो खुले और हवादार नहीं हैं, जिनमें सूर्य का प्रकाश प्रवेश नहीं करता तथा एक ही स्थान पर ज्यादा लोग रह रहे हों।

इस रोग में मनुष्य को अत्यधिक थकान महसूस होती है, उसे हल्का ज्वर रहता है, लगातार खांसी आती है, बलगम आता है तथा कई बार बलगम में खून आने की शिकायत भी हो सकती है। रोगी को कई बार छाती में दर्द भी होता है। इस रोग से बचाव के लिए जन्मोपरांत बच्चे को बी.सी.जी. का टीका अवश्य लगवाना चाहिए।

किसी भी प्रकार के बुखार के दौरान तथा इसके पश्चात थकान का होना स्वाभाविक है। इसका कारण शरीर की जीव रासायनिक क्रियाओं में फेर-बदल का होना है। शरीर का ज्वर के दौरान पूर्ण रूप से भोजन ग्रहण न कर सकना, थकान को और बढ़ाता है।

उच्च रक्त चाप

उच्च रक्त चाप के कारण भी मनुष्य थकान का अनुभव करता है। साधारणतया लोग इस रोग को 'हाई ब्लड प्रैशर' के नाम से जानते हैं। संसार की वयस्क जनसंख्या का लगभग 8 प्रतिशत इस रोग का शिकार है। इस बीमारी के सही कारणों का तो अभी तक पता नहीं लग पाया है लेकिन आनुवांशिकी (हैरिडिटी), मोटापा, ज्यादा नमक का उपयोग और धूम्रपान आदि इस रोग की उत्पत्ति में मुख्य भूमिका निभाते हैं। रक्त चाप की सही परिभाषा के संबंध में भी अनेक मतभेद हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार रक्त चाप 20 वर्ष की आयु में 140/90 मि.मी. पारा, 50 वर्ष की आयु में 160/95 मि.मी. पारा और 75 वर्ष की आयु में 170/105 मि.मी. पारा तक ठीक होता है। बेचैनी के कारण या व्यायाम के पश्चात यह बढ़ भी सकता है।

इस रोग में मनुष्य को थकान का अनुभव होने के साथ-साथ सिरदर्द, गर्दन में दर्द, कंधों में खिंचाव, चक्कर आना, काम-काज में मन न लगना, आंखों के आगे अंधेरा छा जाना तथा ठीक से नींद न आने की शिकायतें हो सकती हैं।

कैंसर रोग में थकान इसके मुख्य लक्षणों में से एक है। इस रोग में थकान के अतिरिक्त रोगी का वजन कम होता जाता है, भूख कम लगती है तथा रोगी दिन-प्रतिदिन कमजोर होता जाता है। रोग के अन्य लक्षण इस बात पर निर्भर करते हैं कि कैंसर शरीर के किस अंग में है।

अनेक प्रकार के मानसिक रोगों में भी रोगी को अत्यधिक थकान का अनुभव होता है। इनमें 'डिप्रेशन' नामक रोग सर्वप्रमुख है। इस रोग में रोगी को बहुत उदासी का अनुभव होता है। किसी भी बात से उसका मन प्रसन्न नहीं होता तथा उसका मन किसी काम में नहीं लगता। इस बीमारी में मनुष्य के शरीर में कोई दोष नहीं होता बल्कि उसकी मानसिक स्थिति उसमें थकान का अनुभव उत्पन्न करती है। इस रोग से पीड़ित रोगी को सदैव प्रसन्न रखना चाहिए। तनाव वाली बातें या वे बातें जो उसके मन को दुख पहुंचाएं, उसके सामने नहीं करनी चाहिए।

योगाभ्यास शारीरिक थकान को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इनमें 'शवासन' बहुत लाभदायक है। इस आसन को करते समय मनुष्य को पीठ के बल सीधा लेट कर अपने प्रत्येक अंग को ढीला छोड़ देना चाहिए तथा मन को विचारों से पूर्णतया मुक्त रखना चाहिए। आसन के उपरांत मनुष्य को धीरे-धीरे अपनी सामान्य स्थिति में आना चाहिए। योगाभ्यास के कारण शरीर की मांसपेशियों को पूर्ण रूप से आराम मिलता है और वे पुन: अपनी सक्रिय स्थिति में आ जाती हैं।

थकान के इन सभी कारणों के अतिरिक्त अन्य बहुत-से ऐसे कारण हैं जिनका विवरण इस लेख की सीमा से परे है। अत: किसी मनुष्य को यदि ज्यादा थकान का अनुभव होता है तो उसे इसको साधारण रूप में नहीं लेना चाहिए बल्कि डाक्टर द्वारा अपनी जांच करा कर परामर्श का पालन करना चाहिए। ❑

पाठकों के विचार

इस पत्रिका में *पाठकों के विचार* स्तंभ में पाठकगण ग्रामीण विकास के विभिन्न पहलुओं पर अथवा इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों पर अपने विचार भेज सकते हैं। ये विचार दो सौ शब्दों से अधिक के न हों और सम्पादक, कुरुक्षेत्र, कृषि भवन, नई दिल्ली-110001 के पते पर भेजे जाएं।

इसके लिए कोई परिश्रमिक देय नहीं होगा परंतु उन पाठकों की पत्रिका की एक प्रति भेजी जाएगी जिनके विचार इस स्तंभ में प्रकाशित होंगे।

—सम्पादक

आर.एन.7708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : डी (डी एल) 12057/98
आई.एस.एस.एन. 0971-8451
पूर्व भुगतान के बिना डी.पी.एस.ओ. दिल्ली में डाक में डालने की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन) 55

R.N.7708/57
P&T Regd. No. D (DL) 12057/98
ISSN 0971-8451
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at DPSO, Delhi-54

श्रीमती सुरिन्द्र कौर, निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित और मुद्रित। मुद्रक तारा आर्ट प्रेस, बी-4 हंस भवन, नई दिल्ली-110002. प्रकाशन स्थान : 655, 'ए' विंग, निर्माण भवन, नई दिल्ली-110001. सम्पादक : बलदेव सिंह मदान